नवागत

Navaagat

2021-22

मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
बेनितो हुआरेज़ मार्ग, नई दिल्ली - 110021

Navaagat

नवागत

2021-22

संरक्षक	:	प्रो. श्रीवत्स शास्त्री
विशेष संपादक	:	डॉ. भास्कर लाल कर्ण
संपादक मंडल	:	
	डॉ. ओ. पी. गुसाई (संयोजक)	डॉ. वाई प्रेम कुमार सिंह
	डॉ. एकता दुग्गल	डॉ. वंदिता गौतम
	डॉ. शालिनी मल्होत्रा	डॉ. परमिता घोष
	डॉ. ब्रह्म दत्त	डॉ. शाहिद अली
	डॉ. सारिका शर्मा	डॉ. अमरजी झा
	डॉ. अन्विश कुमार सिसोदिया	डॉ. जितेंद्र यादव
	डॉ. वंदना मौर्य	सुश्री शालू
डिजाइनिंग और प्रिंटिंग :		
छात्र संपादक	:	शिवम राय, हिंदी (विशेष), तृतीय वर्ष
कवर	:	भास्कर
छवि स्त्रोत	:	भास्कर और इंटरनेट

Motilal Nehru College

(University of Delhi)

Benito Juarez Marg, New Delhi - 110021

फॉर्म IV

पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए

1. पत्रिका का शीर्षक	:	नवागत
2. प्रकाशनों की आवधिकता	:	वार्षिक
3. प्रकाशक का नाम	:	प्रो. श्रीवत्स शास्त्री, कार्यवाहक प्राचार्य
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	मोतीलाल नेहरू कॉलेज, नई दिल्ली
4. प्रकाशन का स्थान	:	मोतीलाल नेहरू कॉलेज, नई दिल्ली
5. प्रिंटर का नाम	:	
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	
6. मुख्य संपादक का नाम	:	डॉ. ओ. पी. गुसाई
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	मोतीलाल नेहरू कॉलेज, नई दिल्ली

मैं, प्रो. श्रीवत्स शास्त्री, एतद्द्वारा घोषणा करता हूं कि ऊपर दिए गए विवरण मेरे सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

मई, 2022

FORM IV

For Publication of Periodicals

1.	Title of the Magazine	:	Navaagat
2.	Periodicity of Publications	:	Annual
3.	Name of the Publisher	:	Prof. Shrivatsa Shastri, Acting Principal
	Nationality	:	Indian
	Address	:	Motilal Nehru College, New Delhi
4.	Place of Publication	:	Motilal Nehru College, New Delhi
5.	Name of the Printer	:	Saran International
	Nationality	:	Indian
	Address	:	
6.	Name of the Chief Editor	:	Dr. O. P. Gusai
	Nationality	:	Indian
	Address	:	Motilal Nehru College, New Delhi

I, Prof. Shrivatsa Shastri, do hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

May, 2022

अध्यक्ष का संदेश

(Message from the Chairman)

सिद्ध शिक्षाशास्त्री सर टी० पी० नन ने कहा था कि – " संसार में जो भी अच्छाई आती है वह व्यक्तिगत पुरुषों तथा स्त्रियों के स्वतंत्र प्रयासों द्धारा आती है।शिक्षा की की व्यवस्था इसी सत्य पर आधारित होनी चाहिये तथा शिक्षा को ऐसी दशायें उत्पन्न करनी चाहिये जो वैयक्तिकता का पूर्ण विकास हो सके तथा व्यक्ति मानव जीवन को अपना मौलिक योग दे सके" । चूँकि शिक्षा के उदेश्यों का जीवन के उदेश्यों से सम्बन्ध होता है, इसीलिए शिक्षा के उदेश्यों का निर्माण करना भी ठीक ऐसे ही है जैसे जीवन के उदेश्यों को निर्धारित करना। जे० एफ़० ब्राउन के अनुसार किसी भी देश की तथा किसी भी युग की शिक्षा शासक-वर्ग की विशेषताओं को व्यक्त करती है। इसका प्रमाण यह है कि जनतांत्रिक, स्वेच्छाचारी, फासिस्ट तथा साम्यवादी आदि सभी प्रकार की सकारों ने शिक्षा के उदेश्यों का निर्माण अपने-अपने अलग-अलग लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सदैव अलग-अलग ढंगों से किया है। जिन देशों में जनतंत्र का बोलबाला है वहाँ पर " उतम नागरिक बनना " ही शिक्षा का मुख्य उदेश्य होता है। अमरीका, इंग्लैंड तथा भारत आदि जनतांत्रिक देशों के उदाहरण इस सम्बन्ध में दिये जा सकते हैं। इसके विपरीत स्वेच्छाचारी राज्यों में चाहे वे राजतन्त्र हों अथवा तानाशाही, शिक्षा का उदेश्य " शासकों के प्रति अपार श्रध्दा तथा उनकी आज्ञा का पालन करना " हो होता है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में जहाँ कई तरह की समस्याएं है वहाँ जरूरी है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्री नही बल्कि एक आदर्श नागरिक निर्माण भी हो। मोतीलाल नेहरू कॉलेज परिवार अपने इस उद्देश्य में पूरी तरह सफल रहा है। मैं सभी छात्रों, कर्मचारियों और शिक्षकों को शुभकामनाएं देता हूँ कि इस निर्माण प्रक्रिया में निरंतर अपना योगदान दिया है।

श्री तरुण बैस, *(अध्यक्ष, शासी निकाय)*

प्राचार्य संदेश

(Message from the Principal's Desk)

हम सभी के जीवन में शिक्षा का विशिष्ट स्थान होता है। हमने अपने इस महाविद्यालय में, एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया है जो विद्यार्थियों को बौद्धिक उत्कृष्टता की ऊंचाइयों पर ले जाए, उन्हें सभी तरह की संकीर्णताओं से

मुक्त रखे, और एक ऐसा माहौल बनाए जहाँ कोई भी परिष्कृत ज्ञान के सुख को पाकर अभिभूत हो सके। हमारे महाविद्यालय की सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ पढ़ते हुए आप सीखने की किसी भी निर्दिष्ट राह को चुन सकते हैं और अपनी प्रतिभा को फलने-फूलने दे सकते हैं । दिल्ली विश्वविद्यालय के दक्षिणी परिसर का हमारा यह महाविद्यालय प्रकृति के आगोश में हरे-भरे और शांत वातावरण में स्थित है। अकादमिक क्षेत्र से लेकर कला, संस्कृति, खेल, सामाजिक, राजनीतिक नेतृत्व सभी क्षेत्रों में हमारा महाविद्यालय अपने विद्यार्थियों के हितों को पूरा करने और उन्हें आगे बढ़ाने का आश्वासन देता है।

मित्रो, शिक्षा का उद्देश्य महज डिग्री हासिल करने मात्र तक सीमित नहीं होना चाहिए। बल्कि इस ज्ञान को अपने समाज, राजनीति और संस्कृति का हिस्सा बनाने के लिए हमारा महाविद्यालय परिवार पूरी तरह प्रतिबद्ध है।हमारे महाविद्यालय में कार्यरत सभी अध्यापक अपने-अपने विषय के विशेषज्ञ हैं। शिक्षकों के साथ कक्षा में रू-ब-रू होकर हमारे विद्यार्थियों को जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है वह पुस्तकों से प्राप्त उनके ज्ञान में न केवल अभिवृद्धि करता है बल्कि कक्षा में पढ़ते हुए विद्यार्थी यह सीखते हैं कि कैसे उन्हें अपने दृष्टिकोण को रखना है और समाज के साथ संवाद स्थापित करना है। मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय अपने विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण, ज्ञान और आत्म-विस्तार का पर्याप्त अवसर और माहौल प्रदान करता है।

महाविद्यालय में पढ़ाए जानेवाले विषय अलग-अलग हो सकते हैं, उनके अपने-अपने महत्व और उनकी चुनौतियाँ हो सकती हैं लेकिन समग्र रूप में ये हमारे महाविद्यालय में एक उत्कृष्ट अकादमिक वातावरण का निर्माण करते हैं। इसके लिए एकाग्रता और समर्पण की जरूरत होती है। हमें पूरे महाविद्यालय परिवार की मेधा, उनकी कार्य-प्रणाली और समर्पित भाव से कार्य करने की उनकी क्षमता पर पूरा भरोसा है, और उनसे बहुत उम्मीदें भी हैं।

प्रो. श्रीवत्स शास्त्री

<u>*संपादकीय*</u>

(Editorial)

मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय अपनी वार्षिक पत्रिका 'नवागत' का नवीन अंक प्रकाशित कर रहा है। वैश्विक कोरोना महामारी के कारण तमाम अकादमिक गतिविधियाँ थम-सी गई थीं। लेकिन मनुष्य की जीजिविषा ने ऐतिहासिक रूप से तमाम बाधाओं पर विजय ही प्राप्त की है। मैं पत्रिका के संपादन से जुडे सभी सदस्यों का धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ कि उन्होंने बहुत कम समय में इस महत्वपूर्ण कार्य को संपन्न किया है।

मुझे आशा है कि ये पत्रिका विद्यार्थियों में नवचेतना जगाने में ज़रूर सफल होगी। साथ ही भावी शिक्षकों एवं समाज के उत्थान में भावी भूमिका का निर्माण भी कर पायेगी। मैं समस्त विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ और मुझे विश्वास है कि इस पत्रिका के माध्यम से *शिक्षक रूपी विद्यार्थी* अपनी कलम को शक्ति प्रदान करेंगे

मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय अपने उत्कृष्ट शैक्षिक परिमाणों के लिए ख्याति नाम हैं, यहाँ के विद्यार्थी उन्नत, वैचारिक मूल्य और सफलतम जीवन दर्शन के प्रतीक है। आशा है भविष्य में यह महाविद्यालय अपने नए शिखर और आयामों पर अग्रसर रहेगा। यह पत्रिका महाविद्यालय के प्रतिभावान विद्यार्थियों, युवा लेखकों और रचनात्मक लेखन में रुचि रखने वाले प्राध्यापकों का एक महत्वपूर्ण मंच है। इसमें प्रकाशित होने वाली रचनाएँ समाज के नए भावबोध से जुड़ी हुई है। इसमें साहित्य और संस्कृति के विविध विषयों से जुड़ी रचनाएँ हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हैं। उम्मीद करता हूँ कि ये सभी रचनाएँ राष्ट के विकास को नई दिशा देने में समर्थ होगीं। पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखकों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

दिल्ली विश्वविद्यालय के दक्षिणी परिसर में अवस्थित मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय अपने अकादमिक उत्कृष्ठता के लिए जाना जाता है। महाविद्यालय परिसर का बेहतर शैक्षणिक माहौल बनाने में छात्र-शिक्षकों के साथ-साथ गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। पत्रिका का प्रकाशन भी इनके सहयोग के बिना संभव नहीं था। पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग करने वाले सभी सहयोगियों को बधाई और शुभकामनाएँ।

डॉ. ओ पी गुसाई*(संयोजक)*

दस्तावेज़

लेखक को जनता का प्रतिनिधि होना चाहिए : कुंवर नारायण

(ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि)

अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' के प्रमुख कवियों में से एक कुँवर नारायण आधुनिक हिंदी कविता में नई कविता आंदोलन के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। अपनी रचनाशीलता में इतिहास और मिथक के जरिये वर्तमान को देखने वाले इस सृजनधर्मी का रचना संसार व्यापक है। यद्यपि कुँवर नारायण की मूल विधा कविता रही है लेकिन उन्होंने कहानी, लेख व समीक्षाओं के साथ-साथ सिनेमा, रंगमंच एवं अन्य कलाओं पर भी बखूबी लेखनी चलायी है। उनकी कविताओं-कहानियों का कई भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। भारत के साहित्य जगत के सर्वोच्च सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिंदी के वरिष्ठ कवि कुँवर नारायण के साथ आज के समय में लेखक की भूमिका को लेकर **डॉ. शशि कुमार 'शशिकांत'** *(असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग)* ने बातचीत की। 21 फरवरी 2011 के दैनिक भास्कर, नई दिल्ली में प्रकाशित यह बातचीत प्रस्तुत है:
सम्पादक मंडल

शशिकांत : लेखक या कलाकार अपने समय का जागरूक और समाज का संवेदनशील मनुष्य होता है. उसके लिए सामाजिक प्रतिबद्धता कितना जरूरी है?

कुँवर नारायण : सामाजिक प्रतिबद्धता एक ऐसी चीज है जिससे लेखक का जुड़ाव खुद-ब-खुद होता है। यह प्रतिबद्धता लेखक में उसके सामाजिक सरोकारों और नैतिक जीवन मूल्यों से जुडकर अभिव्यक्ति पाती है। लेखक का हदय बड़ा होना चाहिए, अन्यथा आपका लेखन बनावटी सा लगता है। जिस दौर में मैंने पढ़ना-लिखना शुरू किया, हमारे बीच ऐसे कई लेखक थे, जिनकी रचनाओं में और उनके व्यक्तित्व में सामाजिक सरोकार और जीवन दृष्टि स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। उस समय भी और आज भी जब-जब मैं लिखने बैठता हूं तो मुझे उन लेखकों की याद आती है। हमारी नई पीढ़ी के लेखकों को उनकी भाषा, उनके साहित्य और उनकी जीवन दृष्टि से प्रेरणा लेनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर मशहूर चित्रकार बान गॉग को देखा जाए। उनकी जिंदगी में एक समय इतनी गरीबी आ गई थी कि उनके पास कैनवस खरीदने के पैसे तक नहीं होते थे। लेकिन फिर भी कला के प्रति उनकी प्रतिबद्धता पर कोई आंच नहीं आई। वे दवाई के डिब्बे पर चारकोल से पेंटिंग करते थे। क्योंकि कलर खरीदने के पैसे भी उनके पास नहीं

होते थे। और आज उनकी वे पेंटिंग बहुत महंगे बिक रहे हैं। दरअसल सच्चे लेखक और कलाकार में खुद को अभिव्यक्त करने की हुड़क होती है। एक बड़े कवि-लेखक में इस तरह का सामाजिक सरोकार होना ही चाहिए। निराला और उनके समकालीन कई बड़े कवियों पर यह लागू होती है। मेरी नजर में आज भी ऐसे बहुत से लेखक हैं और ऐसा लेखन हो रहा है जिसमें सामाजिक सरोकार स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है। लेकिन यह भी सच है कि कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिनके लेखन में समाजिक सरोकार बनावटी सा लगता है।

शशिकांत : एक संवेदनशील रचनाकार के तौर पर आज के समय और समाज की समस्याओं को आप किस नजरिये से देखते हैं? इन समस्याओं से निपटने में लेखक या कलाकार की क्या भूमिका हो सकती है?

कुँवर नारायण : आज आपको समझना चाहिए कि आज हमारी जिंदगी काफी जटिल हो गई है। कई तरह की समस्याएं हमारे सामने हैं। लेकिन मैं मानता हूँ कि यदि समस्याएं और चुनौतियां बढ़ी हैं तो उनका सामना करने का हमारा सामर्थ्य भी बढ़ा है। हर जमाने में समस्याएं रहती हैं और हर पीढ़ी को उनका सामना करना पड़ता है। लेकिन आज हम एक ऐसे कठिन समय में जी रहे हैं जिसमें मुश्किलें काफी बढ़ गई हैं। वे कौन कौन सी मुश्किलें हैं, उन मुश्किलों से कैसे निपटा जाए, हमारे समय के लेखकों को इसका उपचार खोजना होगा। हमारे समय के लेखक पूरी शक्ति के साथ इसके ईलाज के बारे में नहीं सोच पा रहे हैं। यह सच हो सकता है। लेकिन हमारे बीच के कुछ लेखकों का ध्यान इन समस्याओं पर जा रहा है। हमें इसका संतोष भी होना चाहिए। दरअसल जब से पंजाब का विभाजन हुआ है, उसके बाद कम से कम यह नहीं कहा जा सकता कि हमारा साहित्य अपने समय और समाज की समस्याओं के प्रति निरपेक्ष रहा है। साहित्यकारों की दृष्टि अपने आसपास की समस्याओं पर रहती है। यह छूटनेवाली नहीं है, खासकर तब जब हम एक ऐसे कठिन और अत्याचारी समय में रह रहे हैं।

शशिकांत : लेखक और कलाकार अपनी कृतियों के माध्यम से समाज को आईना दिखाता है। वह उसकी अंतश्चेतना का संरक्षक है। अपने-आप से, समाज और सत्ता से वह सवाल करता है। लेखक और सत्ता के साथ उसके सम्बन्ध और द्वंद्व को आप किस रुप में देखते हैं?

कुँवर नारायण : जहां तक लेखक और सत्ता के बीच संबंध का प्रश्न है, साहित्य के साथ लेखक का संबंध जटिल रहा है। हालांकि इतिहास में ऐसे भी तमाम उदाहरण हैं कि सत्ता के साथ रहते हुए भी लेखकों ने अच्छे साहित्य की रचना की है। लेकिन ज्यादातर लेखकों ने सत्ता से बाहर रहकर अच्छा लिखा है और अभिव्यक्ति के खतरे भी उठाए हैं। फारसी कवि हकीम अबुल कासिम फिरदौसी महमूद गजनबी के दरबार में संरक्षण पाने वाले प्रमुख विद्वान थे। फिरदौसी ने महमूद गजनबी को खुश करने के लिए 'शाहनामा'की रचना की थी, जो बाद में फारस का राष्ट्रीय महाकाव्य बन गया। इसमें फिरदौसी ने सातवीं सदी में फारस पर अरबी फतह के पहले के ईरान के बारे में लिखा है। महमूद गजनवी ने फिरदौसी को यह वचन दिया था कि वह हर शब्द के लिए एक दीनार देगा। वर्षो की मेहनत के बाद जब फिरदौसी 'शाहनामा' लेकर महमूद गजनबी के पास गया तो महमूद को वह किताब पसंद नहीं आई। उसने उसे प्रत्येक शब्द के लिए एक दीनार नहीं बल्कि एक दिरहम का भुगतान करने का आदेश दिया। फिरदौसी को यह स्वीकार नहीं था। वह खाली हाथ अपने घर लौट गया। यह वायदा खिलाफी थी जैसे किसी कवि के प्रति शब्द एक

रुपये देने का वचन देकर प्रति शब्द एक पैसा दिया जाए। उसके बाद फिरदौसी ने महमूद के खिलाफ लिखने लगा। उसके बाद महमूद को उसके मंत्रियों ने सलाह दी कि फिरदौसी को उसी दर पर भुगतान किया जाए जो तय की गयी थी। महमूद ने आदेश दे दिया। दीनारों से भरी गाड़ी जब फिरदौसी के घर पहुंची तो उसकी लाश निकल रही थी। पूरी उम्र गरीबी, बेबसी और फटेहाली में काटने के बाद फिरदौसी मर चुका था। जो लेखक सत्ता के साथ रहते हैं उन्हें देखना चाहिए कि सत्ता जनता के प्रति प्रतिबद्ध है या नहीं, क्योंकि एक लेखक के लिए आम जनता का हित सर्वोपरि है। लेखक को जनता का प्रतिनिधि होना चाहिए। राज्यसत्ता तभी तक जबतक वह जनता के पक्ष में है। अगर राजसत्ता जनता से जुड़े अपने सरोकारों से पीछे हट जाती है तो लेखक को भी सत्ता से नाता तोड़ लेना चाहिए।

शशिकांत : क्या आप मानते हैं कि राजनीतिक सत्ता से इतर लेखक और कलाकार की अपनी आंतरिक सत्ता होती है जिसमें वह मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त कर समाज के नव निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है? लेकिन कुछ लेखक और कलाकार सत्ता और बाजार के साथ खड़े होकर इसमें गतिरोध पैदा करते हैं?

कुँवर नारायण : एक सच्चे लेखक के लिए सबसे पहली और ज़रूरी चीज है - आज़ादी । वह अपने पक्ष बदल सकता है क्योंकि वह समाज और जनता का चौकीदार है। इस बात में कुछ सच्चाई है कि आज कुछ लेखक सत्ता और बाजार का समर्थन कर रहे हैं।

शशिकांत : साहित्य और कला को केंद्र में रखकर आजकल बड़े-बड़े आयोजन होने लगे हैं. साहित्य और कला की उत्सव धर्मिता के बारे में आपकी क्या राय है?

कुँवर नारायण : मैं साहित्य और कला के उत्सवों के आयोजन के ख़िलाफ़ नहीं हूँ लेकिन ऐसे मौकों पर हमारा ध्यान साहित्य और कला से जुड़े विषयों और मुद्दों पर केंद्रित रहना चाहिए। ऐसे उत्सव यदि लेखकों और पाठकों का ध्यान खींचते हैं और उन्हें एक दूसरे के साथ संवाद करने के मौके देते हैं तो ऐसे साहित्यिक उत्सव जरूर आयोजित होने चाहिए। मैं साहित्य उत्सवों को एक अवसर के रूप में देखता हूं। इस संदर्भ में एक उदाहरण मैं देना चाहूँगा। अशोक वाजपेयी ने जब भेपाल में भारत भवन बनाया तब वे देश और दुनिया भर के लेखकों, कलाकारों को वहाँ आमंत्रित करते थे। हमलोग वहाँ एक साथ बैठते थे और साहित्य एवं कला के मुद्दे पर गंभीर बातचीत करते थे।

शशिकांत : आज के लेखकों की नई पीढ़ी के लिए आपका सन्देश?

कुँवर नारायण : जहां तक नई पीढ़ी के लेखकों का सवाल है, मैं उनसे बार-बार कहता हूँ कि श्रेष्ठ लेखन के लिए अध्ययन अत्यंत जरूरी है। जीवन का अनुभव हर किसी के पास होता है, लेकिन अध्ययन से आपके जीवनानुभव में प्रखरता आ जाती है। पढ़ते हुए आप दूसरे के जीवनानुभवों और विचारों से गहरे रूप से जुड़ते हैं, आत्म-मंथन करते हैं और खुद को, समय को, और समाज की समस्याओं को बेहतर ढंग से अभिव्यक्ति कर पाते हैं। दरअसल अध्ययन का एक संश्लिष्ट रूप है लेखन। अपने जीवन में मुझे हमेशा पढने में दिलचस्पी रही है। इसलिए पढने-लिखने को मैं एक संयुक्त कर्म मानता हूँ।

Memories

SAGA OF THE MIGRATING SHEEP HERDERS OBSERVED IN DELHI[1]

Dr. Vipul Singh

--- *Professor, Department of History, DU*

You must have been observing the moving flock of sheep in huge number in Delhi during November to May every year. These sheep are controlled by few turban wearing men resembling people from Rajasthan. Have you ever tried to know why and from where do they come. I am going to tell you the saga of these migrants.

The men moving with the sheep are known as the Raikas (also called Rebaris). They are a traditional camel and sheep herding community in western Rajasthan. Historically, they have remained outside their original habitat for the most part of their life. They have their permanent villages where their family lives in the traditional huts with a *bara* (cattle-shed) attached to it. These migrants wander covering hundreds and thousands of miles to obtain feed for their camels and sheep every year. They migrate in large groups with each of the camps having many adult males, females and kids accompanied by hundreds of sheep and many camels. Unlike other pastoralists in arid and semi-arid parts of the world, the Raikas migrate in order to tackle climatically harsh conditions and also to track the annual variations in rainfall. The rainfall deficiency in Western Rajasthan lead to extreme unpredictability in terms of geographic distribution of grassland and force the herders to move to huge distance to meet their animals' food.

In this sense, the Raikas may be termed as environmental migrants as they migrate with their animals on grazing expedition constrained by scarce environmental resources in their original habitat. Migration for them is compulsive to counter the risks stemming from environmental fluctuations, and thus it is a 'naturalized fact'. My interaction with the community revealed that state has preferentially provided

---

[1] Based on Vipul Singh's Rachel carson Center, LMU Munich (Germany) discussion paper (2011).

cultivators of the Raika villages in western Rajasthan with incentives and resources to expand cultivation, while ignoring the requirements of the pastoral needs of the Raikas in the region. The non-pastoralist villagers within villages inhabited by the Raikas have used environmental conservation as an excuse to close off traditional grazing lands to grazing.

Often individual members of households migrate in a pattern called 'dispatch migration'. Households dispatch individual members to take advantage of distant opportunities, without requiring the relocation of the entire household. Migrants, according to this view, select nearby destinations and leave for short periods of time and the movement of entire households is expected to be an action of last resort. When depletion of resources worsens, the people who depend on this resource have to search for some way to compensate. In Indian context, one of the earliest researches that related environmental factor to migration was done in early eighties of the twentieth century, when it was proposed that 'migration by choice occurs due to drought and famine'. It has been observed that long distance migration from Western Rajasthan was not 'so acute' and 'migration occurs only during famine years'. But over the last few decades (till recently), when most of the herd worldwide are becoming sedentary, the long distance migration has become an accepted and annual reality in Western Rajasthan.

In this phase of economic development throughout the country Western Rajasthan has also moved towards prosperity, and therefore, the episodes of migration would ideally have been on a decline. But contrary to it, the long distance migration by the pastoralists has acquired an upward trend over the years. Based on my fieldwork in various villages of Western Rajasthan, Barmer, Bikaner, Jaisalmer, Jodhpur and Pali in particular, I could observe a massive movement of the Raika pastoralists with their cattle to places outside Rajasthan.

One of the prime factors behind this long distance migration for almost 9-10 months in a year, and sometimes even longer, has been the long dry season leading to severe shortage of fodder for the cattle. Most of the Raika families go on grazing expeditions for eight to nine months. They start their journey in October-November and return back only in July with onset of the monsoon rains. They stay at their

home for 3-4 months and keep the cattle in the *bara.* On occasion they have remained away from their homes for all 12 months of the year. Sometimes there have been such Raika families who could come back only after five or six years, and there are few members who have not returned home for the last twenty-five years. Such migrants are always on the move with their animals, moving from one pasture to another, and preferring never to return home with the flock.

During my interaction with the Raika families in village Gadana in Pali district, I could gather few cases Raika men who could not come home to attend the marriage ceremony of their daughters because they did not want to leave their flock unattended. In drought year, these Raikas also carried cattle of other high caste villagers. Those who sent their cattle with them, believed that they were as good as lost since all would not be returned to them and few may be sold by the Raikas on way.

Figure: Raika with his flock of sheep moving through a residential area of Delhi

The sheep and goats are grazed or browsed on uncultivated land during the monsoon. After the kharif (rain-fed summer), crops are harvested, and the animals are grazed on crop stubbles in harvested fields. During the latter part of the year, beginning in September/October, most non-migratory flocks graze on uncultivated areas, and migratory flocks on the harvested fields and reserve forests in their migratory tracts. The lands that were earlier grazed by the Raikas have now increasingly come under cultivation, and therefore, this pastoral community is forced to wander farther and for longer periods. Thus, the migration seems to be largely because of push factors operative at the place of origin such as environmental degradation process and shrinkage of common property resources.

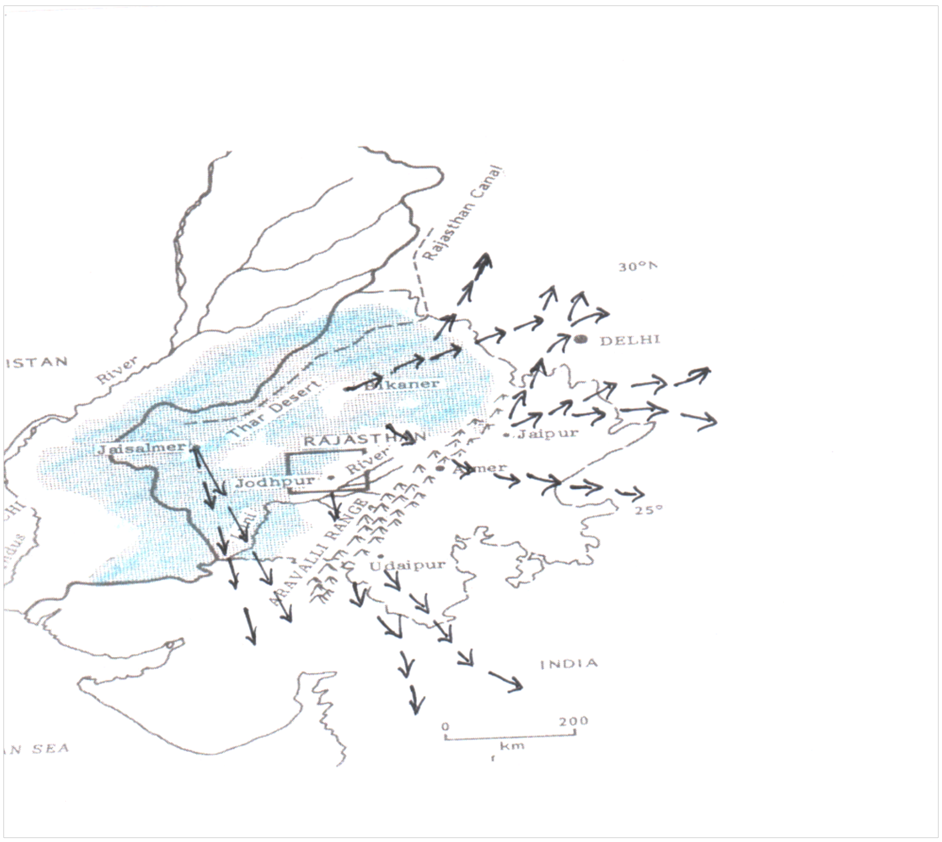

Figure: Traditional Routes of Migration by Raikas

The major districts where the Raika population is concentrated are Jodhpur, Pali, Sirohi, Barmer and Jaisalmer, located in western Rajasthan. Since further west and north of this region is pure desert, their natural movement has been traditionally towards the modern bordering states of Gujarat, Madhya Pradesh, Haryana and Uttar Pradesh. Many a times they move across further down south to Andhra

Pradesh and Maharashtra. Most of the Raika group spends four to five months reaching their last destination in various states, and from there they start returning back to base. Their traditional knowledge is so sound about monsoon that they would always follow the monsoon track during return journey. That is why the route taken by them in the return journey is often different from the one taken on proceeding for migration. On an average one Raika group travels a distance of roughly 1000 kilometers in one migration cycle.

These days the herd of cattle owned by the Raikas is mainly sheep, with few one or two camels. The camels are used to carry their goods, tents and their female members and kids.

Figure: Raika Family Moving with their Household

The increase in number of sheep and goat is very noticeable over the last few decades, and this has taken place despite the diminishing feed and fodder supply base. The natural corollary to the constantly decreasing feed and fodder in Western Rajasthan would have been dissuasion towards livestock breeding. And consequently, this would have led to lesser migration of the Raika pastoralists with

the cattle. But the latest available statistical data shows that the livestock population, specially that of goat and sheep has increased many fold ever since 1951 down to 2007. The available data suggests that Eastern Rajasthan, which is climatically not so hostile region and where more feed and fodder is available in comparison to Western Rajasthan, has not undergone that much substantial increase in sheep and goat population.

If we look at the 18th livestock census 2007 conducted by department of Animal Husbandry, Government of Rajasthan (Figure 5 and 6), a noticeable difference could be observed in sheep and goat population between Eastern and Western Rajasthan. Roughly a third of the total sheep population of India, and 43% of total goat population here is concentrated in Western Rajasthan. There is also a change in the composition of livestock and a move away from cattle towards sheep and goat, which are considered to be sturdier. Sheep in particular has been the main animals that trail along with the Raikas during migration.

A comparison of the population growth chart with the dry climate of different parts of Rajasthan leads us to an apparently contradictory situation. The more hostile is the region, the greater has been the population increase of sheep and goat, meaning thereby that the shortage of fodder might not have been the only deciding factor behind long distance migration. If we look at the economics of the sheep breeding this would lead us to our hypothesis as to how the Raikas have increasingly been practicing migration as livelihood strategy.

Migration in this way is being seen by the Raikas as beneficial livelihood strategy. By migrating they not only increase the reproductive potential of their sheep, but also get back good return by selling wool and sheep itself for meat on their way. The increase in meat and wool receipts over the last few decades have made the large and mobile herd production viable. Migration also allows the Raikas to get maximum return as they do not have to pay the middlemen. Apart from it, the region to which they migrate also have protein-rich grasses grown around fringes of agricultural fields. This consumption of crude protein leads to superior reproductive rate of the sheep.

कहानी

बिखरी ख़ुशियों का बँटवारा

अभिषेक सुमन

-- *भौतिकी विशेष, द्वितीय वर्ष*

"वो देख कितना अच्छा दिख रहा।" आसमान की ओर ईशारा करते हुए चीनू टीले पर चढ़कर बैठ गया। "मैंने कहा था न? यहाँ से सब ज़्यादा सुंदर दिखेगा। चल आ जा, यहाँ बैठ।" कहते हुए उसने राघव को ऊपर बुलाया जो अभी तक टीले के नीचे खड़े-खड़े आसमान को टकटकी लगाए देख रहा था।

उसके ऊपर पहुँचते ही चीनू दोनों हाथों को सिर के नीचे रखते हुए जमीन पर लेट कर आसमान में हजारों तारों के एकसाथ टूटने जैसे मनोरम दृश्य का आनंद ले रहा था। उसकी चमकती आँखें और बड़ी मुस्कान से पसर चुके चेहरे को देखकर प्रतीत हो रहा था मानो जैसे स्वर्ग में इंद्र अपने सिंहासन पर बैठकर, अप्सराओं के मनोरम नृत्य का आनंद ले रहे हों। राघव भी आकर उसके बगल में बैठ जाता है। रंग-बिरंगे सुंदर छटाओं से भरा, पूरा आसमान उन चार आँखों में चमक रहा था जिससे मंत्रमुग्ध होकर वे आनंदानुभूति से चौड़ी होती जा रही थी।

"तूने कभी सच में टूटता तारा देखा है?" आकाश में गड़ी नज़रों को बिना हटाए चीनू ने पूछा।
"नहीं देखा। क्यों?"
"मैंने सुना है, टूटता तारा देखकर कोई दुआ मांगी जाय तो वह पूरी होती है।"
"धत्त! ऐसा भी कुछ होता है भला? दुआएँ पूरी करने को क्या ख़ुदा तारे तोड़ता रहता है?"
"पता नहीं।"
"अच्छा माना, ऐसा होता होगा तो अगर तूने अभी सच में टूटता तारा देखा तो क्या मांगेगा?"
"बस यही कि अगले साल बाबूजी ढेर सारे पटाखे लाकर दें। और तू?
"मुझे कुछ नहीं मांगना।"

उसके इस जवाब पर चीनू ने आकाश से अपनी नज़र हटाकर एक पल के लिए उसकी तरफ़ देखा। हाथों को ज़मीन पर रोपे, पीछे झुककर बैठे राघव की आँखें अब भी आकाश पर ही टिकी हुई थी। दिन में पिता के साथ हुई छोटी सी बहस उसके मन को अब भी थोड़ा विचलित कर रही थी।

"अरे! अब तू बच्चा थोड़े रहा? क्या करेगा पटाखे लेकर?" पटाखों के लिए आग्रह करने पर मना करते हुए पिता के द्वारा दिया गया यह तर्क़ उसे ठीक नहीं लगा था।
"बाबूजी! कुछ दिन पहले जब मैं दूर खेलने चला गया था और देर से आया तब आपने कहा था कि मैं अब भी बच्चा हूँ। अभी कह रहे हैं कि मैं बच्चा नहीं हूँ।" परिस्थिति के हिसाब से बदलते पिता के तर्क़ उसे समझ नहीं आते थे।

"तू समझ क्यों नहीं रहा राघव? पटाखा बेकार चीज होती है। थोड़ी देर का ही खेल होता है ये सब।"
"नहीं पिताजी पिछली दिवाली में भी आप बस मिठाई ही लाए थे।"

मिठाई की बात सुनकर उसे जैसे अचानक कुछ याद आता है। वह निराश आँखों से बेटे की तरफ़ देखता रहता है। पिता का हताश चेहरा बयाँ कर रहा था कि शायद इस बार मिठाई ला पाना भी मुश्किल था, जो पटाखे की कमी की भरपाई कर दिया करता था। वो मिठाई जो राघव के लिए पटाखों के बदले एक प्रकार का मुआवजा होती थी।

राघव, पिता के और कुछ ना कहने पर चुप ही रहा लेकिन उसके मन में द्वंद जारी था। वह अभी इस काबिल नहीं हुआ था कि पिता की निराश आँखों में समायी मजबूरी को पढ़ सके। भले ही मुँह ने पटाखों को बेकार बताते हुए हज़ार तर्क दिए हों लेकिन आँखें साफ बयाँ कर रही थी - "बेटा मैं भी तुम्हारे लिए पटाखे, मिठाई और नये कपड़े लाना चाहता हूँ।" लेकिन पिता ने कभी अपनी बेबसी ज़ाहिर नहीं की थी।

शाम होते ही उसने अपने प्रिय दोस्त चीनू से मिलकर पटाखे न मिलने का अपना दुख उसे सुनाया।
"भई! तू चिंता न कर। मुझे भी बाबूजी ने पटाखा लाकर नहीं दिया। लेकिन मेरे पास एक प्लान है।"
"कैसा प्लान?"
"बगल के मोहल्ले वाले बहुत ग़ज़ब का दिवाली मनाते हैं। हमलोग रात में चलेंगे वहाँ।"
"जाएँगे। लेकिन क्यों?"
"तू समझा नहीं न? देख, पटाखा कोई भी जलाये, देखने में तो एक जैसा मज़ा ही आएगा न?"

चीनू के सुझाए योजना के अनुसार दोनों सखा बगल के मोहल्ले के पास एक ऊँचे टीले पर चले आए थे। यहाँ आने पर राघव को महसूस हो गया था कि उसका दोस्त चीनू कितना दूरदर्शी था। उसकी बात एकदम सही निकली थी, जब आकाश में कोई रॉकेट ऊपर जाता था और उसकी सतरंगी छटा एकदम से बिखर जाती तब दोनों के चेहरों पर ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता था। थोड़ा धीमा ही सही लेकिन पटाखों का शोर भी कान में ठीक से आ जाता था। बहुत देर तक वहाँ बैठे हुए दोनों ने आसमान में पसरी अनंत ख़ुशियों को मन भर ख़ूब समेटा।
"चल भई अब। बहुत देर हो गयी।" चीनू ने ख़ुद में मग्न हुए पड़े अपने दोस्त को टोका।
"मेरे पास भी एक प्लान है।" राघव ने खड़ा होते हुए आगे कहा "कल हम भी दीवाली मनायेंगे, हमारे पास भी पटाखे होंगे।"
"लेकिन कैसे?"
"अभी नहीं बताऊँगा, कल सुबह ज़ल्दी मिलना।"
रंग-बिरंगा आकाश पीछे छोड़कर, दोनों दोस्त अपनी बस्ती की तरफ़ चल पड़े। रास्ते पर चलते हुए दोनों चुपचाप चले जा जा रहे थे। कुछ बात करें भी तो यह सोचने के लिए उनका मन रिक्त था ही नहीं। वह उन ख़ुबसूरत दृश्यों की यादों से अब भी भरा हुआ था।

जब अंधकार अपने चरम पर होता है, यह सूर्योदय होने से पहले का वही समय था जब चीनू राघव की झोपड़ी के बाहर आकर इंतजार करने लग गया था। राघव ने उसे सुबह ज़ल्दी आने कहा था लेकिन कितनी ज़ल्दी आना था? यह पूछना रह गया था। इसलिए समय के इस असमंजस में वह सुबह इतनी ज़ल्दी ही आ गया था। ख़ैर, उसे ज़्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा, कुछ ही देर में राघव से उसकी मुलाकात हुई। आकाश में लालिमा छायी जा रही थी लेकिन जमीन पर अभी थोड़ा अंधकार छाया ही था जब राघव ने उसे अपनी योजना सुनाई। उसकी बात सुनकर चीनू ख़ुशी से उछल पड़ा था। योजना पूरी तरह से समझने-समझाने के बाद दोनों जन उस मोहल्ले की तरफ़ निकल गए जहाँ कल रात दिवाली मनायी जा रही थी। सड़क पर पड़े जले-अधजले पटाखों के अवशेष में बड़ी बारीकी से नज़र दौड़ाते हुए दोनों ऐसे पटाखों को खोजने लगे जो जल नहीं पाए थे। एक पटाखा मिलते ही उनको अपने योजना की सफलता का पूर्वानुमान हो गया था। आगे बढ़ने पर धीरे-धीरे उनकी मुट्ठी भरने लगी, फिर जब सारे जेब भी भर गए तब उन्होंने अपनी कमीज़ को नीचे से मोड़कर झोली जैसी बना ली और उसमें जमा करते गये।"

उनके घर लौटने तक दिन अच्छी तरह खिल चुका था। अपनी बस्ती में आते ही, हाथों में पटाखे दिखने पर कुछ और राघव-चीनू ने उन दोनों को घेर लिया था। बिना कुछ सोचे उन्होंने वहाँ मौजूद सभी के बीच पटाखे आपस में बाँट लिए। कचरे से उठाकर लायी ख़ुशियाँ बाँट देने पर उन दोनों का मन संतोष से भर गया था। ऐसा संतोष जो न पिछली रात चमकते आकाश को देखकर मिला था और न ही आज सारे पटाखों को अकेले जलाकर मिलने वाला था।

कविता

कागज़ी मसले

राजेंद्र पटेल

-- *बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष*

किताबों में अभी तक पढ़ रहे थे कागज़ी मसले
मसले के जिनमें काफ़िरों ने जान थी फूँकी
मसले वे जिनसे ना था मतलब ना कोई नाता
मसले के जिनके हल जुटाने में गया बचपन
एक दिन इक सेव ने गिरकर करी ग़लती
ग़लती के कारण लिख गये थे सैकड़ों पन्ने
पन्ने हज़ारों थे के लाखों थे नहीं गिनती
पलटने में उन्हें इक उम्र ही पूरी गुज़र जाये
इन पन्नों में ही लिक्खे गये वे ज़ालमीं मसले
जिनने मिरे कुनबे के इक घर को उजाड़ा है

उस घर में अभी है रो रहा इक बाप ज़ोरों से
माँ बेहोस है या मरगयी है आज सदमे में
लटका हुआ है लाडला फाँसी के फंदे पर
फंदा बना है लाडली की लाल चुनरी से
उस सेव के गिरने की गुत्थी ना समझ आयी
ग़लती रही इतनी के मसले हल न हो पाए
वो मजदूर आशाओं के भारी बोझ को ढोता
मजदूर को हर भूल का कर भी चुकाना था
मजदूरों की जेबों में कहाँ रहतीं हैं दो कौडीं
कर ना चुका पायें तो फंदे बाँध लेते हैं
कागज़ी मसलों ने उसका कत्ल कर डाला

कविता

विद्रोह की ज्वाला

राजेंद्र पटेल

-- *बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष*

ये आंसू आँख के दरिये में घर कर बैठ जाते हैं
उस दरिये को इक दीवार से बांधा गया है
वो दीवार कच्ची है
अक्सर टूट जाती है
निकलती धार है फिर आंसुओं की आँख से बहकर
कहती है के दरिया आंसुओं का बहुत गहरा है
उसको बाँधलो वरना ये दुनियाँ न रहेगी
दरिया बह गया गर एक दिन ज्वाला उठेगी
ज्वाला जिसे हर पल वे आंसू थामते हैं
ज्वाला जिसे पलकें निरंतर रोकतीं हैं
वो विद्रोह की ज्वाला

गर एक आँख में विद्रोह ज्वाला उठ गयी
सारीं दीवारों में दरारें आगयीं
विद्रोह का वह बाँध तब ढ़ह जाएगा
दरिया आंसुओं का रिक्त तब होजायेगा

हर आँख से फिर एक ज्वाला उठेगी
विद्रोह की अग्नि निरंतर बहेगी
कल तक थीं मन में ही के लपटें उठ रहीं
विद्रोह में तन तन तुम्हारा तपेगा
कल तक हमारा वन हुआ था खाक जो
के आज सिंघासन जलेगा आग में
सत्ता राख होगी

लेकिन राख में से एक सत्ता फिर उठेगी
बादल आस के उस आसमां में फिर उठेंगे
दरिया आंसुओं का आँख में फिरसे भरेगा
दीवारें सब्र कीं दरिये को फिरसे बाँधलेंगीं

आशा है के फिर ज्वाला को उठना न पड़े
सिंहासन से पूरे वन को भिड़ना न पड़े

लेख

दक्षिणपूर्वएशियादेशेषु रामायणस्य प्रभावः

डॉ. वेदमित्र आर्य

-- *संस्कृत विभागः*

विश्वस्य महाकाव्येषु रामायणस्य विशिष्टं स्थानमस्ति । महर्षिवाल्मीकिना कृतं रामायणं सप्तकाण्डेषु विभक्तम् – बालकाण्डः , अयोध्याकाण्डः , अरण्यकाण्डः , किष्किन्धाकाण्डः , सुन्दरकाण्डः , युद्धकाण्डः उत्तरकाण्डश्च । अस्मिन् ग्रन्थे चतुर्विंशतिसहस्रम् श्लोकाः सन्ति , अतः एतत् ‘ चतुर्विंशतिसाहस्री संहिता ’ इति कथ्यते । महर्षिवाल्मीकिना अस्य महत्त्वं प्रतिपादयता उच्यते –

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्चमहीतले ।

तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचारयति ॥

दक्षिणपूर्वएशियादेशषु रामकथाया: प्रसार: कदा अभूत् ? अस्मिन् विषये अनेकानि मतानि सन्ति । परन्तु पुष्ट-प्रमाणेन ज्ञायते यत् ४०० ईसापूर्वलिखितस्य दशरथ-जातकस्य माध्यमेनैव तत्र रामकथाया: प्रचार: प्रसारश्च अभवत् । सम्प्रति रामायणं तत्र सांस्कृतिक-साहित्यिक-कलात्मकरूपे च अङ्गीकृतमस्ति ।

इण्डोनेशियादेशे रामायणम् –

अत्र जावाभाषायां योगीश्वर-कविना रचितं ' काकविन-रामायणं ' प्राप्यते । एतत् षड्विंशत्यध्ययेषु विभक्तमस्ति । नवम्या: शताब्द्या: ' पांनाताराना ' नामकस्य मन्दिरस्य १०६ शिलाचित्रेषु काकविन-रामायणस्य वर्णनमस्ति । कैमलन-महोदयस्य मते इण्डोनेशियादेशस्थस्य जावाद्वीपस्य शिवमन्दिरे द्वाचत्वारिंशत् ब्रह्ममन्दिरे च त्रिंशत् रामायणाधारितानि शिलाचित्राणि सन्ति । अत्र ' लाखोन ' नामकस्य शास्त्रीय-नृत्यस्य माध्यमेन रामायणस्य प्रदर्शनं क्रियते । ' वेयांग ' नाम्नि पुत्तलिकानाटकेऽपि रामकथाया: मञ्चनं क्रियते ।

थाईलैणडदेशे रामायणम् –

थाईलैण्डदेशे आदिकविवाल्मीकिना रचितस्य रामायणस्य महत्त्वपूर्णं स्थानमस्ति । रामायणमाधृत्यैव थाईभाषायां ' रामकियेन ' इति काव्यं रचितम् । अत्र मार्गाणां , वनस्पतिनां , भवनानां , सेतूनां व्यापारिकसंस्थानाञ्च नामकरणं रामायणस्य पात्राधारितमस्ति । अत्र राजभवनपरिसरे रामकथाया: द्विपञ्चाशदुत्तरएकशतं शिलाचित्राणि उत्कीर्णानि सन्ति । एवं अत्रत्य साहित्ये , संस्कृतौ , नाट्यकलायां , चित्रकलायां , मूर्तिकलायां , पुरातत्त्वादिषु च रामायणस्य प्रभाव: दरीदृश्यते । प्रो. सत्यव्रतशास्त्रीमहोदयेन थाई ' रामकियेन ' ग्रन्थमाधृत्य संस्कृतभाषायां रामकीर्तिमहाकाव्यं रचितम् । १९८६ , १९९४ २०००तमे वर्षे च ' थाई-भारतकल्चरल लंच एण्ड स्टडीज सेन्टर ' इत्यस्य तत्त्वावधाने अत्र अन्तर्राष्टीय रामायणसम्मेलनमपि अभूत् ।

कम्बोजदेशे रामायणम् –

कम्बोजदेशे सप्तम्यां शताब्द्यां ' रामकेत्ति ' नामिका रामकथा रचिता । यस्याम् ५०३४ पद्यानि सन्ति । पुन: अष्टम्यां शताब्द्यां ' रामकेत्ति द्वितीय ' इति नाम्ना एका संक्षिप्ता रामकथा रचिता । यस्याम् १७७४ पद्यानि सन्ति । अत्र रामायणस्य लोकप्रियताया: उदाहरणं ' लाखोन खोल ' नाम्नि प्राचीननाटके दृश्यते । अद्यत्वे अपि अस्य नाटकस्य प्रदर्शनं सम्पूर्णे कम्बोजदेशे क्रियते । कम्बोजदेशस्य अंकोरवाट-अंकोथामादिषु स्थानेषु रामकथाया: अनेकानि मनोहराणि शिलाचित्राणि प्राप्यन्ते ।

मलेशियादेशे रामायणम् –

मलेशियादेशे ' हिकायत सेरीरामा ' इति नाम्ना रामकथा प्रचलितास्ति । अत्र ' दलोग ' नामकस्य पुत्तलिकानृत्यस्य माध्यमेन रामकथाया: प्रदर्शनं क्रियते । कथावाचका: ' पेरली पुरलर लोंग ' इति कथ्यन्ते । कुआलालंपुरे प्रभुरामस्य विशालं मन्दिरमस्ति , यत्र रामकथया सम्बन्धिता: एकसहस्रम् मूर्तय: चित्राणि च सन्ति । दक्षिणपूर्वएशियादेशानां शिलाचित्रेषु रामकथाया: यथा अभिव्यक्ति: अभूत् तथा रामायणस्य जन्मभूमौ भारतेऽपि दुर्लभास्ति ।

उपर्युक्तेन ज्ञायते यत् दक्षिणपूर्वएशियादेशेषु रामकथाया: अनेकानि स्वरूपाणि विद्यन्ते । रामकथा तत्रत्य जनमानसस्य संस्कृते: च आधारभूतास्ति । एवं रामकथाया: माध्यमेन तत्र धर्मस्य , कर्मण: , समर्पणस्य , आस्थाया:, निष्ठाया: कर्तव्यस्य च प्रचार: प्रसारोऽभवत् ।

कहानी

सोने का डर

कुलदीप

-- *बी ए प्रोग्राम, तृतीय वर्ष*

राम देखता है कि उसके घर की लाइट जल रही है और पलंग तथा खाट पर कोई भी नहीं सो रहा। वह अपने घर में खुद को अकेला पाता है। रात के 2:00 बज रहे थे। राम के माता-पिता, भाई-बहन कोई भी घर में नहीं था, राम अपने परिवार को देखने के लिए बाहर निकलता है। घर से बाहर जाने के बाद वह देखता है कि उसके भाई-बहन आगे वाले मोड़ पर खड़े हैं और किसी को देख रहे हैं । चेहरे पर डर के साथ, पर माता-पिता वहाँ भी नहीं होते। राम अपनी चप्पल पहनने के लिए पीछे मुड़ता है। तभी उसके बहन-भाई की चीख सुनाई देती है। राम पलट कर देखता है तो मोड़ पर कोई भी नहीं होता। राम दौड़ कर मोड़ तक जाता है तो देखता है कि उसकी माता रास्ते पर गिरी है और उसके भाई-बहन माता को उठा रहे है और सभी रो रहे हैं।

वहाँ पर रेत भी उड़ रही थी मानो जैसे कोई चीज़ बहुत तेज़ी से गई हो। राम के बहन भाई अपनी माता को घर में ले जाते है। राम को अभी तक कुछ पता नहीं कि क्या हुआ! पर उसके पिता वहाँ पर नहीं थे। उसकी बहन, माता और भाई सब डरे हुए थे और रो रहे थे। अब राम भी डरने लगा और रोने लगा।

राम की माता ने राम की बहन से कहा एक रिश्तेदार को फोन मिलाने को। वह रिश्तेदार पुलिस में है। राम की माता फोन पर रिश्तेदार को पूरी घटना बताती है कि अभी कुछ समय पहले कुछ पुलिस वाले आए थे और राम के पिता और मुझे थाने ले जाने लगे तभी गाड़ी में बैठने के बाद पता नहीं उनके मन में क्या आया उन्होंने मुझे गाड़ी से बाहर धक्का दे दिया और राम के पिता चिल्लाते रह गए पर पुलिस वालों ने उन्हें पकड़ लिया और गाड़ी तेज गति के साथ भगा ले गए। अब राम को घटना का पता चला। रिश्तेदार ने ज़वाब दिया - देखता हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ और कॉल काट दी।

राम को याद आता है कि कुछ महीने पहले ज़मीन को लेकर उसके पिता की किसी से लड़ाई भी हुई थी। जिन लोगो से लड़ाई हुई थी वह भी पुलिस में है और उन्होंने धमकी भी दी थी गोली मारने की। इसी बात को याद कर सभी रो रहे थे। तभी राम की बड़ी बहन सौ नंबर पुलिस थाने में कॉल कर देती है। जहाँ वह यह घटना बताती है तो पुलिस वाले कहते हैं कि मैम हमने आपकी शिकायत दर्ज कर ली है। हम देखते क्या हो सकता है। यह कहने के बाद वे लोग कॉल काट देते हैं। परंतु अभी भी राम का परिवार डरा हुआ था, क्योंकि वह पुलिस वाले ही थे जो राम के पिता को ले गए थे। इसके बाद राम की बहन को कुछ याद आता है और वह न्यूज़ पेपर खोजती है। न्यूज़ पेपर में से वह हेल्पलाइन नंबर पर कॉल करना शुरू कर देती है। काफी नंबर पर कॉल नहीं लगती, पर काफ़ी कोशिश करने के बाद उनमें से एक नम्बर पर कॉल लगती है। वह एक नंबर पुलिस हेडक्वार्टर का होता है।

राम की बहन उन्हें पूरी घटना बताती है तो वह लोग कहते हैं कि आप लोग अपने एरिया के पुलिस थाने कॉल करें और कॉल काट देते हैं। अभी भी राम और उसका पूरा परिवार डरे हुए और रो रहे हैं। कुछ समय बाद पुलिस हेडक्वार्टर से वापस कॉल आती है वह पूछते हैं, अभी आपने ही कॉल की थी ना?
राम की बहन- 'जी सर'
हेड ऑफिस से फोन पर पूछते हैं- 'आपका नाम क्या है?'
राम की बहन – 'जी सर सरिता।'
'माता पिता का नाम ?'
'जी सर सूरज सिंह पिता और माता माया।'
'घर का पता?'
'जी सर घर 243 रामगढ़ दिल्ली।'
'कितने पुलिस वाले थे और उनका नाम पता है?'
राम की बहन- 'सर पुलिस वालों का नाम तो नहीं याद है, पुलिस वालों ने नेमप्लेट उल्टे लगा रखी थी, पर वह चार लोग थे और गाड़ी का नंबर था DL 122B22।'
'ठीक है हमने नोट कर लिया है अब हम देखते हैं क्या हो सकता है।'

इस सब के बाद अभी भी पूरा परिवार रो रहा था। पहली बार था जब यह परिवार इस प्रकार की घटना का सामना कर रहा था। पूरी रात रोते- रोते कट गई पर अभी तक कोई भी खबर नहीं मिली राम के पिता की। सुबह कब दोपहर में बदल गई किसी को पता ही नहीं चला। बिना खाए पिए राम का परिवार एक कॉल या खबर का इंतजार कर रहे थे। अब दिन भी बीत गया सूरज भी छुप गया और रात 8:00 बजने को आए थे कि तभी राम के पिता घर आते हैं और यह देखकर सब की साँस में साँस आती है।

राम की माता पूछती है कि क्या हुआ था? राम के पिता बताते हैं कि कुछ महीनों पहले जो ज़मीन को लेकर लड़ाई हुई थी पुलिस वाले से। उस केस की सुनवाई थी कोर्ट में। हाजिरी लगाने के लिए पुलिस वालों को वारंट दिया गया था।
राम की बहन – 'हाँ, तो इस प्रकार कौन ले जाता है?'
'बेटा रात को महिलाओं को गिरफ्तार नहीं कर सकते, इसीलिए वह सब हुआ! पर उन लोगों की हरकत के लिए हम शिकायत करेंगे उनके बड़े अधिकारी और कोर्ट में भी।'
राम की बहन पिता को बताती है, कि जो न्यूज़पेपर आप मेरे पढ़ने के लिए लाए थे उनमें से खोज कर मैंने पुलिस हेडक्वार्टर कॉल मिलाया था।
पिता – 'इसलिए मैं कहता हूँ पढ़ाई सबसे बड़ा हथियार है।'

राम अपने घर में सबसे छोटा है और वह इस घटना से बहुत ही डर गया था। अब वह नहीं चाहता कि रात को फिर वह उठे और कोई ना मिले इसलिए वह अपने पिता से लिपट कर सो जाता है।

Prose Poetry

I Feel …

Akshita Mishra

--------------BA Programme, IInd Year

You dig open every inch of the graveyard of the memories I had buried. When I'm with you I feel like a bruised war veteran whose bruises are finally getting acknowledged after years of neglect. My cursed soul is resting in the garden outside this house, covered in moss and dirt, just 40 feet beneath the entrance you stepped in from. It's climbing up it's a way through hell while we share laughs by the fireplace. It's coming for me. This blue neighborhood has always been my curse and my utmost salvation. I physically cannot stand this place and I mentally cannot escape it no matter how far I run away.

I fear that someday the wretched barren land of my mind would engulf the flowers you planted. Your flowers are of course nice. They smell good. They feel like spring in the autumn. All that this cemetery has ever known is thorns, thus, it has grown a disregard for the flowers you bring. Your flowers don't seem familiar. I fear one day you'll forget to water the plants you planted and they'll wither away.

You shush the noises when the distant past comes resounding through deafening echoes. You try to paint the white walls of my head with hues of love and light, and while you do it, the walls soak all the colors only to regress my headspace into the torturous white room that it has been all along.

My heart breaks to let you go but I don't want you to end up as the collateral damage of my war against myself. I can not do this to you.

कविता

तू राघव ना बन पाएगा

अस्मत आयुष
बीए प्रोग्राम, तृतीय वर्ष

मैं मई सुता का परम पूज्य
तू भूमि सुता का स्वामी है,
ये पंच सती में सुशोभित
वो देश निकाली रानी है।

मैं ब्रह्म कुल का प्रज्ज्वल दीपक
तू क्षत्रिय धर्म अभिमानी है,
हूँ काया- कल्प में तुझसे दोगुन
तू बामण स्वरुप निज प्राणी है

मैं ज्ञान वेद उपवेद पुराण को
कंठ सुसज्जित रखता हूँ
तू अल्पकाल विद्या धन पातक
मैं मोल तेरा नहीं करता हूँ

मैं सबसे बड़ा हूँ रुद्र पुजारी
मृत्युंजय को ललकार दिया
दशशिश चढ़ा कर मैंने
शिवलिंग हिम से उतार लिया

जंगल के बौने जुगलकिशोर ने
लंकेश नरेश को जीता है
दानव की दल अपदल सेना पर
बंदर भालू की विजेता है
ए राघव तू ही बतला दे
क्यों ध्वस्त हुआ मैं उस रण में
हर कोटी तुझसे उपर होकर
अपमान सहा मैंने जग में

तब कोशलाधिश मुस्काए
लंकेश प्रिय को गले लगाए
बोले तात तू महाप्रतापी
तू सर्व ज्येष्ठ, तू अभिनाशी।

किन्तु इस तेरे मैं मैं ने
तेरे मति का निः शेष किया है
अहम् ब्रह्मा अस्मी के जप से
अपना ही सर्वनाश किया है

तू गर राघव रमणीया को
छल से न वशहित करता
तू प्रेम की परम परितज्ञा
बल से ना खण्डित करता

सुन अहंकारी दानव नरेश
मंदोदरी के प्यारे लंकेश
जब अहं प्राणी पर राज करे
उसके यश का सत्या नाश करे
तुझको दिए अवसर अनेक
विभीषण, हनुमत, अंगद समेत
तेरे स्वर्णिम लंका का दाह किया
फिर वन, उपवन पर साध्य हुआ

जो तूने आखरी भूल किया
था अनुज प्रेम निस्मोल किया
यदि सहोदर कद्र को ज्ञाता
तो तू भी लखन स्वरुप में पाता

ये पूर्व अंकित कुछ बातें हैं
जो तुझको ग्लानि कर जाते हैं
पर जा वत्स तुझे भी धार दिया
मृत्यु काल तलक उबार दिया

अब ना तू बस दोगुन होगा
मुझसे तू दशक आवर्धन होगा
तेरे कुल तब भी साथ रहेंगे
विशाल काय प्रतिसाल रहेंगे

पर तू तब भी फूका जाएगा
तू राघव ना बन पाएगा ...

लेख

दिव्यांग कौन हैं ?

मंज़ूर अली कलाम

-- *बी ए प्रोग्राम, तृतीय वर्ष*

हमारा देश विविधता से भरा देश हैं। यहाँ विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक व भौगोलिक विविधताएँ पाई जाती हैं। साथ ही समाज में अनेक मिथ भी पाए जाते हैं। उनमे से एक बहुत ही घिनौना मिथ दिव्यांगजनों को लेकर व्याप्त हैं जो कि समाज के सभी वर्गों में पाया जाता हैं। अर्थात् यह मिथ समाज के लगभग सभी वर्गों में उभयनिष्ठ हैं। दिव्यांगजनों को लेकर पुरे देश में यह पूर्वाग्रह होता हैं कि यह दिव्यांगता उनके पिछले जन्मों के असामाजिक कर्मों का फल हैं।

दिव्यांग होना किसी व्यक्तिगत इंसान के वश की बात नहीं होती हैं। ये तो एक इत्तफाक से ही हो सकता हैं। लेकिन फिर भी लोग दिव्यांगों को लेकर विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह आसानी से गढ़ लेते हैं। जैसे - अगर कोई व्यक्ति दृष्टिबाधित हैं तो उनके प्रति समाज में माना जाता हैं कि इसने पिछले जन्म में कोई पाप अवश्य किया होगा और इसी आधार पर उसका कोई गलत उपनाम रख लिया जाता हैं। इसी प्रकार की टिप्पणियाँ उनके लिए आनी शुरू हो जाती हैं जो उनको रास्ते में हर जगह से आती सुनाई देने लगती हैं। दिव्यांगजन अपनी दिव्यांगता से ज्यादा समाज के तानों से परेशान होने लगते हैं। वह दिव्यांगता तो उनकी विशेष योग्यता में परिवर्तित हो जाती हैं परन्तु समाज की उपेक्षाएँ उन पर मनोवैज्ञानिक रूप से नकारात्मक प्रभाव डालना शुरू कर देती हैं।

असल में तो समाज का यह कर्तव्य बनता हैं कि दिव्यांगजनों को जरूरत पड़ने पर उनकी सहायता करें। मगर सभ्य कहे जाने वाले लोग उनके साथ कुछ और ही करते हैं। भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों ने दिव्यांगजनों के जीवन को आसान बनाने के लिए और साथ ही समाज को उनके प्रति संवेदनशील बनाने के लिए कई योजनाएँ चलाई हैं। फिर भी छोटे कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों पर इनका प्रभाव उत्साहजनक नहीं रहा हैं।

बहरेपन, दृष्टिबाधित, मानसिक रूप से पीड़ित, अस्थि बधिर इत्यादि सभी दिव्यांगजनों के साथ विभिन्न प्रकार के मजाक होना समाज में आम बात हैं। उदाहरणस्वरूप दृष्टिबाधित व्यक्ति को गलत राह बताना, अस्थि बधिर व्यक्ति को पीछे से मारकर भागना, बहरे व्यक्ति के कानों के पास जोर-जोर से चिल्लाना इत्यादि ये सभी हरकतें किसी का मनोरंजन का स्रोत बनती हैं तो दिव्यांगों के जीवन के साथ खिलवाड़ करती हैं। क्या उनके मौलिक अधिकारों के साथ-साथ समाज का मौलिक कर्त्तव्य नहीं बनता कि दिव्यांग के जीवन को मनोरंजन का साधन नहीं बनाना चाहिए। इन सभी बातों से स्पष्ट होता हैं कि वास्तव में "दिव्यांग कौन हैं"? हमारे समाज की सोच या फिर वह व्यक्ति जिनमें यह शारीरिक दिव्यांगता हैं।

समाज को तो दिव्यांगजनों का सभी तरह से सहयोग करना चाहिए। क्योंकि वे भी समाज का एक अभिन्न हिस्सा हैं। दिव्यांगजनों को उपेक्षित किये बिना उनके हौसले को बुलंद करना चाहिए। उनके साथ समय बिताकर उनको राष्ट्र

निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साथ ही दिव्यांगजनों को उनके क़ानूनी अधिकारों को दिलाने में सहयोग करना चाहिए। उनकी राहों को आसान करना चाहिए। समाज द्वारा उनके साथ अनुचित मजाक करने वाले असामाजिक तत्वों को दण्डित किया जाना चाहिए।

कविता

सपने और डर

राखी सुकलान

--- *भौतिकी विशेष, प्रथम वर्ष*

अधपके आँखों में सपने लिए चलती रही मैं,
नहीं था उस वक्त किसी का डर मानकर सबको सही मैं।
उम्र बढ़ी, सपने आँखों के भी पकने लगे,

करना है अब उन सपनों को पूरा दिल के अरमान ये कहने लगे।
"क्या करेगी ये सब करके" धीरे-धीरे शब्द ये गूँजने लगे,
बैठ गया फिर एक डर दिल में, जिसके अल्फाज़ थे कुछ अनसुने।
जाऊँ जब सपनों को पूरा करने तो दिल का डर सामने आ जाता,
"हैं मेरे भी कुछ अरमान", पर ये किसी से कहा नही जाता।
हो गए दिल के दो हिस्से, जहाँ था सपनों और डर का वास,
सोचा करूँ सपने अपने सभी पूरे, पर क्या ये मन देगा मेरा साथ?
उलझन ये धीरे-धीरे दिल की बढ़ने लगी,
जहाँ थी कभी सपनों की जगह वो अब डर की होने लगी।
दिल-ए-दिमाग़ की कसमकस में कुछ इस तरह से फँस गई मैं,
दिखाई नही देता अब कोई रस्ता जाऊँ किस मोड़ पर मैं।
सपनों की दुनिया में चल रही थी जहाँ मेरी ये मासूम-सी ज़िंदगी,
बन गई अब सुखी झील की तरह
जो थी एक बूँद पानी को भी तरसती।
बंद पिंजरे-सा हो गया है अब ये तय जीवन मेरा,
चाहिए जहाँ से मुझे मुक्ति होगा फिर कहीं और बसेरा।

❖ *इंतज़ार करने वाले को सिर्फ़ इतना मिलता है जितना कोशिश करने वाले छोड़ देते हैं। - अब्दुल कलाम* ❖

पत्र

क़ैद बचपन

श्रेया सिंह

--*इतिहास विशेष, द्वितीय वर्ष*

रोड न.- A14, अस्सी मोहल्ला,
अस्सी, वाराणसी

प्रिय काशी,

कैसी हो बेटी? आशा करती हूँ तुम सुखी होगी। मुझे बड़ी विचित्र बीमारी हुई है, डॉक्टर लोग इसको पैनक्रिएटिक अटैक कह रहे हैं, शायद कोई भारी बीमारी है क्योंकि मेरे बचने की कोई उम्मीद नहीं है। जितने दिन तुम मेरे घर में रहीं हमने बहुत आनंद उठाया। तुमको याद है कैसे तुम सुबह आरती कर के मुझे उठाया करती थी फिर हम घाट पर बैठा करते थे और कचौड़ी-जलेबी खा कर घर आते थे। हर शाम मणिकर्णिका पर बैठ तुम मुझसे कहा करती थी कि तुम मेरा अंतिम संस्कार यहीं कराओगी। अब मैं मरने ही वाला हूँ, तुम आओगी क्या? वैसे मैंने एक अंतिम संस्कार कराने वाली संस्था को कुछ पैसे दे दिए हैं, तुम नहीं भी आ पाईं तो भी सब ठीक होगा। तुम्हारा नाम क्रिस्टीना था, हिन्दी साहित्य की शोध विद्यार्थी, लेकिन विदेशी होकर भी तुम इतनी देसी थी कि सारे देसी तुम्हारे आगे फेल। हालांकि आज मैं ये पत्र तुम्हारे और अपने बारे में बात करने या यादों को फ़िर से जीने के लिए नहीं लिख रहा अपितु मैं किसी से तुम्हारा परिचय करवाना चाहता हूँ।

जिससे आज तुम पत्र के माध्यम से मिलोगी उससे आज तक कोई नहीं मिला मेरे सिवा, मेरे अंदर के बच्चे से। मैं तुमसे उम्र में कितना बड़ा हूँ, तुम ये सुनोगी तो कहोगी बचपन का बचा रहना अच्छा है या ये कि बूढ़े और बच्चे एक जैसे होते हैं; लेकिन ये बच्चा थोड़ा अलग है। अपने जीवन का ये पहलू मैंने हमेशा छुपा कर रखा लेकिन मैं ये बोझ अपने साथ ऊपर तक लेकर नहीं जाना चाहता। 70 बरस से पिंजरे में कैद इस बच्चे को मैं आज आज़ाद करना चाहता हूँ। मैं यह सब शायद अपनी माँ से भी नहीं कह पाता। काशी तुम बहुत मजबूत हो, मेरी कोई बेटी होती तो मैं चाहता वो तुम्हारे जैसी हो। मुझे पता है तुम होती तो इस बात पर मुझसे कहती कि तुम मेरी बेटी नहीं दोस्त जैसी हो। तुम ठीक ही कहती थी, शायद इसलिए मैं आज अपने दोस्त को वो सब कुछ दिखा देना चाहता हूँ, बता देना चाहता हूँ जो मेरे अंदर किसी कंदरा में दबा हुआ है। तुम तो जानती हो मेरा कोई परिवार नहीं है, लेकिन एक वक़्त था कि मेरा भी परिवार था। मेरी माँ, मेरे पिता और मेरे चाचा। तुमको याद है मेरे दुआर पर एक गाय आती थी और मैं उसको शिउली कह कर पुकारता था, शिउली मेरी माँ का नाम था। मैं 8 वर्ष का था, हर जगह प्लेग का प्रकोप था; उस वक्त हम हैदराबाद रहते थे। माँ-बाबूजी ने उसी बीमारी में देह त्याग दी। धीरे-धीरे प्लेग का भी अंत हो गया। बचा मैं और मेरे चाचा।

ये कहानी बहुत हद तक मेरे चाचा के इर्द-गिर्द घूमती है। मेरे चाचा पहलवान थे, छह फुट लंबे, बड़ी-बड़ी मूँछे और चेहरे पर एक फोड़े का बड़ा-सा निशान। कुल मिलाकर बड़े भयानक व खूँखार, जैसे रामायण धारावाहिक में आने

वाला कोई दैत्य हो। मैं अकेला था सो चाचा के साथ हो लिया, वो अकेले थे। शुरू-शुरू में वो खाना खाते वक़्त मेरे लिए दो रोटी छोड़ देते फिर बाद में वो जिस बर्तन में पकाते उसी में खाकर मेरे लिए जूठन छोड़ देते। मैं तो उनके ही टुकड़ों पर पल रहा था, चुपचाप रूखी-सूखी खा लेता। चाचा अक्सर रात में घर नहीं आते थे, मैं अकेले सोकर खुश ही रहता क्योंकि सच कहूँ तो मुझे उनसे बड़ा डर लगता।

एक रात मैं सोया था मुझे बिस्तर पर कुछ हलचल लगी, नींद में ही मैं जान गया की चाचा आए हैं। मैं डर के मारे दुबका रहा। सहसा मेरा मुँह दबोचा गया फिर भी मैंने आँखें न खोली, वैसे ही निढ़ाल पड़ा रहा। उस रात की व्यथा मुझसे लिखी न जाएगी, तुम बस समझ लो बच्ची। जब चाचा ने अपने मन की कर ली वो उठे और फिर कहीं चले गए। मुझे उस रात न जाने क्या सूझा, न जाने क्या शक्ति आई मैं घर से भाग निकला। उस रात कोई मेरी हत्या भी कर देता तो मैं उफ़्फ़ तक न करता। मेरे साथ जो हुआ था उसने मेरे बचपन का गला तो घोंट ही दिया था। कुछ लोग हैदराबद से बनारस तीर्थयात्रा के लिए जा रहे थे मैं उनके साथ हो लिया। बनारस ने मुझे नया जीवन दिया, मैंने यहाँ रहने के लिए घर पाया, शिक्षा प्राप्त की।

इस घटना का मुझ पर ये प्रभाव पड़ा था काशी की मेरा बचपन तो 9 वर्ष की उम्र में ही खत्म हो गया और मेरे अंदर का बच्चा जीवन भर अपने साथ हुए अत्याचार के न्याय के लिए मुझमें ही कैद हो गया। मैंने पूरा जीवन कायरता में गुजारा, मैं जानता हूँ चाचा अब तक नरक में यातना झेल रहे होंगे। मगर इस बच्चे ने अपनी आँखों से उन्हें सड़ते नहीं देखा। अब मैं इसको अपने अंदर और कैद करके नहीं रखना चाहता। यहाँ तक लिखते-लिखते मैं सच में खुला महसूस कर रहा हूँ, मन धीरे-धीरे शांत हो रहा है। मैं तुम्हारा बहुत शुक्रगुज़ार हूँ, वो कहते हैं न सीखने की कोई उम्र नहीं होती, मैंने तुमसे बहुत सीखा है। तुमको याद है वो गली का लफंगा जिसको हमने मिलकर पीटा था और अंत में तुम्हें मेरा हाथ थामना पड़ा क्योंकि मैं रुक ही नहीं रहा था। मैं वही यातना अपने चाचा को देना चाहता था।

कहते हैं काशी में सबको मुक्ति मिल जाती है, मेरी काशी तो तुम हो, मेरी मुक्ति की चाभी तुम हो। तुमने मुझे इतनी शक्ति दी की मैं अपने जीवन का ये अध्याय तुम्हें सुना पाऊँ। अब मैं मुक्त हूँ, अब मैं निश्चिंत होकर देह त्याग सकता हूँ। यदि अगला जन्म होता है तो मैं अब एक गौरैया बनना चाहता हूँ। तुम अपनी छत पर दाना-पानी की व्यवस्था किए रहना मैं अवश्य आऊँगा। तुम कुछ भी कहो लेकिन मैं हूँ तुमसे बड़ा ही। इसलिए तुम्हें ये आशीर्वाद देता हूँ कि जितनी शक्ति, जितना स्नेह, जितना उल्लास तुम बाक़ियों के जीवन में भरती हो; ईश्वर उसका सौगुना तुम्हारे जीवन में भरें। मेरी प्यारी काशी उर्फ़ क्रिस्टीना बेहद प्रेम तुमको।

तुम्हारा मित्र
कमलाप्रसाद उर्फ़ लुलु

Poem

SAPCE-THE BEAUTY OF INFINITE

Sanskar Dwivedi

-- *BSC (Hons) PHYSICS, IInd Year*

The beauty of infinity is quite, aloof and still
You have its number so close in you…
Space isn't empty, it's not still
The most beautiful and lovely be there for first sight in it.
I am lost for it because imagination is mine!
You be its creation but not me,
I am god, yes I'm the creator!!

Space isn't infinite, I've seen it…
My v7 will give your answers
Its my weapon, Days& Night to win a rumble,
Oh! Yes the rumble of this tumbling chaos.
None is going to get the infinity
Its only you, you the reader or my creator of this doomed worldly life…
Keep up, or die! Do well or die, but never do for the space!!

I've seen the hells cape in lap of sleep
It has boundaries, trust me!
This space lets you explore yourself, your beauty & limits my dear god…
Sense the infinite, be the infinite and set the infinite!
It's your choice, your life but remember,
You are created & incarnated by the space.
My space, My infinite & its Beauty!!

❖ *जो शिक्षा प्रणाली लड़के-लड़कियों को सामाजिक बुराई या अन्याय के ख़िलाफ़ लड़ना नहीं सिखाती तो उस शिक्षा में ज़रूर कोई ना कोई बुनियादी ख़राबी है। - प्रेमचंद* ❖

कहानी

दरवाज़ा

फ़क़त उमेश

-- *भौतिक विज्ञान विशेष, तृतीय वर्ष*

"दरवाज़ा"
"दरवाज़े के उस तरफ़ ज़िंदगी, मगर आज़ादी नहीं।"
"दरवाज़े के इस तरफ़ आज़ादी, मगर ज़िंदगी नहीं!"
"तुम क्या चुनोगे?", मास्टर जी पूछते हैं।
"मास्टर जी, मैं तो उस तरफ़ जाऊँगा। कम-से-कम ज़िंदा तो रहूँगा!", तरुन तपाक से बोलता है।

टन, टन,... टन, टन,....टन......

घंटी बज जाती है और इससे पहले कि मास्टर जी कुछ भी कहते बाक़ी सभी बच्चों की तरह मैं भी लपककर अपना बसता उठता हूँ, और घर की ओर इस तरह दौड़ पड़ता हूँ मानो एक आशिक़ अपनी महबूबा की ओर। जब घर पहुँचता हूँ तो देखता हूँ कि घर अपनी बाहें फैलाए मेरे स्वागत को बेताब खड़ा है। अपनी महबूबा के अंदर घुसते ही ये बात भी मेरे दिमाग़ से उसी तरह उतर जाती है, जैसे मास्टर जी की बाक़ी सभी बातें।

शाम धरती पर उतर आई है। चाँद आसमान में चढ़ने ही वाला है। मेरी खिड़की का पर्दा खुल चुका है और मैं अपनी दूरबीन के साथ सामने वाले घर पर नज़र गड़ाए हुए हूँ, इंतज़ार में। रीना पेड़ों के पीछे से उड़ती हुई आती है और मेरा इंतज़ार ख़त्म करती है, रोज़ की तरह। रोज़ की ही तरह रीना मुँडेर पर बैठ जाती है, इंतज़ार में कि दरवाज़ा अब खुलेगा; लेकिन दरवाज़ा नहीं खुलता, रोज़ की तरह। रोज़ की ही तरह रीना मुँडेर से उड़ान भरती है और कभी इस खिड़की से, कभी उस खिड़की से अंदर झाँकने की या शायद अंदर घुसने की कोशिश करती है, लेकिन हार जाती है, रोज़ की तरह।

मैं ये सब देखता हूँ, रोज़ की तरह, अपनी दूरबीन से। उसी दूरबीन से जिस से मैं कभी देखा करता था दूर जंगल में ढलती हुई शाम के तले, हल्की ठंडी हवाओं के साथ, सूरज के लाल हो जाने की ख़ुशी में उड़ते अनगिनत परिंदों की चंचल उड़ानें। एक दिन मेरी नज़र एकाएक दो परिंदों पर पड़ी, जो बड़ी ही चंचलता के साथ उड़ रहे थे, हवाओं के साथ अठखेलियाँ करते हुए, एक दूसरे के साथ। मानो लैला-मजनू इस जन्म में रीना-मीना बनकर मेरे सामने आए हों। रीना और मीना, मैंने उसी वक़्त उनका नामकरण कर दिया। मेरी आँखें उन दोनों को पहचानने लगीं और मुझे वो रोज़ नज़र आने लगे। धीरे-धीरे वो मेरी आँखों में इस कदर समा गए की मुझे केवल वो ही नज़र आने लगे। हवाएँ मानो उन्हीं के लिए मस्ताती थीं, मेरी दूरबीन केवल उन्हीं के लिए बनी थी और वो दोनों मेरे लिए। मैं दोनों को तब तक देखा करता, जब तक कि दोनों एक पेड़ पर बनी दरार के पीछे समा ना जाते।

मैं अक्सर अपने घर के आस-पास ऐसी ही कोई दरार ढूँढने लगा, जैसी कि उस पेड़ पर थी। न जाने कब मेरे मन में उन दोनों को अपने घर में या घर के आस-पास ही बसा लेने की ख़्वाहिश जन्म लेने लगी। मेरा बालमन अक्सर उनके साथ ख़ुद को जोड़कर असीम कल्पनाओं में खोया रहता; लेकिन मेरी ख़्वाहिश सिर्फ़ मेरी न थी और ये मुझे तब पता चला जब प्रतिदिन हवाओं के संग उड़ने वाले अनगिनत परिंदों में से बहुत से परिंदों को एक शिकारी जाल में फाँस के गया। उन बहुत से परिंदों के साथ फँस गया मीना। रीना ने उसे छुड़ाने की भरपूर कोशिशें की मगर सब बेकार और अंत में शिकारी सब को उठा कर अपने साथ ले गया। रीना ने उसका पीछा किया। शिकारी सब को अपने घर के अंदर ले गया। घर बहुत बड़ा था, मगर उस में रीना के लिए कोई जगह न थी। दरवाज़े के उस तरफ़ मीना, दरवाज़े के इस तरफ़ रीना और दरवाज़ा बंद। रीना उस रात उसी दरवाज़े के बाहर, उसी मुँडेर पर काफ़ी देर तक बैठी रही। बीच-बीच में मुँडेर से उड़ कर खिड़कियों में ताका-झाँकी करती और फिर मुँडेर पर बैठ जाती; शायद इस उम्मीद में कि मीना अभी उड़ता हुआ बाहर आएगा या इस उम्मीद में कि दरवाज़ा अभी खुलेगा। रीना मीना से ऐसे बिछड़ी मानो लैला मजनू से। मैं भी टकटकी लगाए देखता रहा, जब तक कि रात के खाने का बुलावा नहीं आ गया। मानो दिन की रोशनी में रास रचाने वाले दो प्रेमी रात की चाँदनी में बिछड़ गए हों। उस रोज़ चाँद कुछ धुँधला था, मानो अपने इस दुर्भाग्य पर लजा रहा हो।

उस दिन से हर शाम रीना उस मुँडेर पर आकर बैठ जाती, आस-पास कि खिड़कियों को खँगालती और फिर हार कर वापस लौट जाती। रीना मेरे दिल-ओ-दिमाग़ पर इस कदर डेरा जमा कर बैठ गई थी, जैसे उस मुँडेर पर बैठ जाती थी, हर शाम। उसकी बेचैनी देख मैं बेचैन हो उठता। उसको उदास जान कर मेरा मन उदास हो जाता। रीना और मीना के बीच केवल एक दरवाज़े का फ़ासला था। रीना मानो उस दरवाज़े को रोज़ चुनौती देती। दरवाज़ा रोज़ जीत जाता, लेकिन आज तक रीना को हरा न सका। कौन जाने कि मीना दरवाज़े के उस पार है भी या नहीं। वो ज़िंदा भी है कि नहीं!

एक दिन अचानक, शिकारी, वही शिकारी, घूमता हुआ घर के पिछवाड़े की तरफ़ आया। रीना उसे देख कर डर गई और मुँडेर से उड़ कर छत पर जा बैठी। शिकारी अब रोज़ इस तरफ़ आता और रीना को निहारता, कभी मुँडेर पर बैठी रीना, कभी खिड़कियों से टकराती रीना। एक दिन अचानक शिकारी ने न जाने क्या सोचा और दरवाज़ा खोल दिया। मैंने देखा सामने एक पिंजरा, पिंजरे के अंदर मीना- बेबस, उदास, शांत, निश्चल और मायूस। जी हाँ, दरवाज़े के उस तरफ़ मीना था - ज़िंदा, मगर आज़ाद नहीं। मुझे अचानक मास्टर जी का वो सवाल याद आ गया:-
" दरवाज़ा"
"दरवाज़े के उस तरफ़ ज़िंदगी, मगर आज़ादी नहीं।"
"दरवाज़े के इस तरफ़ आज़ादी, मगर ज़िंदगी नहीं!"
"तुम क्या चुनोगे?"
तरुन का जवाब था कि उस तरफ़ जाना ही ठीक रहेगा, क्यूँकि उस तरफ़ कम-से-कम ज़िंदगी तो है, आज़ादी नहीं तो क्या! उस वक़्त मैं उसकी बात से सहमत था, मगर आज नहीं। आज मैं जानता हूँ कि आज़ादी के बगैर ज़िंदगी कैसी होती है। मुझे मीना से अधिक रीना से हमदर्दी है। मीना की ग़ुलामी ने किस कदर रीना को जकड़ लिया था, ये देखकर मेरा मन बदल गया।

मीना को देखकर रीना फूली न समयी और सीधे पिंजरे से का टकराई। रीना को सामने पाकर मीना की आँखें किसी चाँद की तरह चमक उठीं और वो भी पंख फड़फड़ाने लगा, मानो अभी पिंजरा तोड़कर बाहर निकल आएगा, मगर पिंजरा फिर पिंजरा ठहरा। आख़िर मीना का अहंकार टूटता है और वो फिर शांत हो जाता है, लेकिन उसकी आँखें चमकती रहीं और अपनी ख़ुशी को अपनी उड़ान में समा लेने की कोशिश में पिंजरे के चारों ओर उड़ती रीना को रोमांच से देखती रहीं। फिर शिकारी अंदर गया और उसने पिंजरा खोल दिया। पिंजरे के खुलने की देर थी कि पलक झपक्ते ही दोनों उड़न-छू हो गए।

रात की चाँदनी में बिछड़े प्रेमी अब दिन की रोशनी में एक बार फिर एक हो गए। उनकी उड़ान का पीछा करना अब मेरी दूरबीन के लिए मुश्किल हो रहा था। उनके पंख हवाओं को चुनौती दे रही थे। उनकी उड़ान मानो आसमान को ललकार रही थी। मुझे भी पेड़ आज कुछ ज़्यादा हरे दिख रहे थे। फूल आज कुछ अधिक मुस्कुरा रहे थे, मानो बसंत ऋतु ने उनका स्वागत किया हो। हवा आज कुछ अधिक सुकून दे रही थी। सूरज की लालिमा गहरा रही थी और पंछियों का मधुर संगीत मेरे कानों तक पहुँच रहा था।

फिर अचानक...... 'ढिचकियाँओं' .... और मीना ज़मीन पर आ गिरता है, और साँसों के तार टूट गिरते हैं। मौत का दरवाज़ा खुल जाता है। मीना दरवाज़े के उस पार पहुँच जाता है, जहाँ वो आज़ाद तो था, मगर ज़िंदा नहीं।

दो प्रेमी फिर बिछड़ जाते हैं, ना दिन की रोशनी में, ना रात की चाँदनी में। उस दिन के बाद रीना उड़ती तो थी मगर उसके पंख अठखेलियाँ करना भूल चुके थे। मुझे एक बार फिर मास्टर जी का वो सवाल याद आता है:-
" दरवाज़ा"
"दरवाज़े के उस तरफ़ ज़िंदगी, मगर आज़ादी नहीं।"
"दरवाज़े के इस तरफ़ आज़ादी, मगर ज़िंदगी नहीं!"
"तुम क्या चुनोगे?"
अब मुझे तरुन का जवाब ठीक लग रहा है। जब मीना ज़िंदा था, तब रीना को उम्मीद थी। उसकी ज़िन्दगी ज़िंदा थी। अब उसकी उम्मीद ना रही। वो ज़िंदा है, मगर उसकी ज़िन्दगी मर चुकी है। आज फिर मुझे मीना से अधिक रीना से हमदर्दी है है। आज फिर मेरा मन बदल गया, रीना की ख़ातिर।

❖ *यदि डब्बे में जगह हो तो हिन्दू अलग बैठेगा, मुसलमान अलग और ईसाई अलग। ऐसी स्थिति में एकता नहीं हो सकती है। जब भीड़ होती है, तब मुसलमान और हिन्दू का एक शरीर और दो प्राण हो जाते हैं। नया मुसाफ़िर जब चढने लगता है, तब हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई एक स्वर में चिल्लाते हैं- 'जगह नहीं है।'*

– हरिशंकर परसाई ❖

लेख

स्व का तंत्र

यश गुप्ता

-- *राजनीतिक विज्ञान विशेष, तृतीय वर्ष*

वर्तमान परिदृश्य में हम आज़ादी, स्वतंत्रता, फैज़ अहमद फैज़ की कविता " हम देखेंगे " तथा 'कश्मीर फाइल' जैसी फिल्मों के बाद चलन में आए "रैलिव गेलिव चेलिव" हमारे मस्तिष्क में एक सवाल पैदा करते हैं कि क्या हम वास्तविक में स्वतंत्र हैं? क्या हम सच में एक स्वतंत्र देश के नागरिक हैं? यदि हम स्वतंत्र हैं तो हम पर पाबंदियां क्यों? यदि हम पर पाबंदियां हैं तो फिर हम स्वतंत्र कैसे हुए? ये कुछ ऐसे सवाल है जो अक्सर आजकल हमारे मन में हिलोरे खाता रहता है और जब भी हम आसपास की इससे जुड़ी हुई कोई खबर, न्यूज़, या अखबार पढ़ते हैं तो यह सवाल और भी ज्यादा मुखर होकर सामने आता है । तो चलिए आज इस सवाल का जवाब पाने की एक कोशिश करते हैं।

स्वतंत्रता का मूल अर्थ स्व का तंत्र होता है। यह तंत्र हमें किस ओर कार्य करना है, किस तरीके से कार्य करना है और कब कार्य करना है तथा कैसे कार्य करना है इसका भान कराता है एवं मार्ग प्रशस्त करता है। जब राज्य की परिकल्पना ही समाज में नहीं थी तब मनुष्य प्रकृति के कानूनों द्वारा संचालित होता था। प्राकृतिक कानून अर्थात सबसे मूल मानवीय अधिकार। यह वह समय था जब मनुष्य पूर्णतया स्वतंत्र था वह जो भी चाहता था कर सकता था। खा सकता था। पी सकता था। घूम सकता था। कुछ भी कर सकता था। पर इतनी ज्यादा स्वतंत्रता शायद घातक साबित हो सकती थी। और इसी घातक साबित होती स्वतंत्रता को रोकने के लिए राज्य का निर्माण हुआ। राज्य का निर्माण इस शर्त पर हुआ कि वह उस स्वतंत्रता को सभी नागरिकों में जो भी उस राज्य में रहेंगे उनके मध्य बराबर रुप से एवं संपूर्ण रूप से विभाजित की जाएगी। यहां पर हमें स्वतंत्रता की नई परिभाषा देखने को मिलती है जिसे हम सकारात्मक स्वतंत्रता कहते हैं। जबकि मनुष्य जब प्रकृति में वास करता था तब उसके पास जो स्वतंत्रता थी उसे हमने नकारात्मक स्वतंत्रता माना।

बहुत ही सरल शब्दों में यदि समझे तो सकारात्मक स्वतंत्रता का अर्थ होता है कि आंतरिक बाधाओं से मुक्ति अर्थात अपने स्वार्थ से मुक्ति और समाज को एक परिवार के रूप में देखना। यदि हम भारतीय इतिहास को देखेंगे तो हमारे इतिहास में *वसुधैव कुटुंबकम्* का मंत्र सदियों से चला आ रहा है। इसके विपरीत नकारात्मक स्वतंत्रता का अर्थ होता है कि बाह्य बाधाओं से मुक्ति। यह वह स्थिति है जब राज्य रुपी संस्था नहीं होती है और मनुष्य जो चाहे वह करने के लिए स्वतंत्र होता है। यहाँ से हमें जो चीज पूर्ण रूप से समझ लेनी चाहिए कि राज्य का निर्माण मनुष्य की स्वतंत्रता को कम नहीं अपितु उसे और अधिक विस्तृत रूप देने के लिए किया गया था। राज्य को चलाने वाली सरकार की बागडोर भी नागरिकों के हाथ में होती है। जे० एस० मिल कहते हैं कि नागरिकों को सरकार चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए परंतु एक बार सरकार चुनने पर नागरिकों को सदैव सरकार की सारे कृत्यों पर नज़र रखनी चाहिए। अन्यथा वह सरकार कब उसकी स्वतंत्रता का हनन करने लगेगी उसे मालूम भी नहीं चलेगा। एंटोनियो ग्रामसी, एक नव मार्क्सवादी विचारक, कहते हैं कि राज्य वैचारिक उपकरणों के माध्यम से नागरिकों को अंधा बनाए रखता है।

अर्थात् किसी एक विचार को इस प्रकार से प्रदर्शित करता है कि सारी जनता उस विचार को इतनी महत्ता देने लगती है कि सरकार के बाकी सारे उन कार्यों को भूल जाती है जो कि उनकी स्वतंत्रता पर बाधक बन रहे हैं या बन सकते हैं।

समझने की आवश्यकता बस इतनी सी है कि स्वतंत्रता हमारी है राज्य सिर्फ उसके संरक्षण के लिए बनाया गया है क्योंकि जो मूल स्वतंत्रता के अधिकार हैं वह राज्य द्वारा नहीं बल्कि प्रकृति द्वारा निर्मित है इसलिए ना तो राज्य उन्हें छीन सकता है ना ही उनमें कोई कमी कर सकता है। हम स्वतंत्रता के स्वयं धारक हैं तो उसकी विनाशक भी हम स्वयं ही हो सकते हैं। इसीलिए यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपनी स्वतंत्रता के मर्म को किस प्रकार अपनी जीवन-शैली में निहित कर के एक स्वतंत्र जीवन का परिचालन करते हैं।

कविता

संघर्ष से सफलता

आर्यमान सिंह

-- *हिंदी विशेष, प्रथम वर्ष*

तू हार का अनुताप ना कर,
यों ही इस पर विलाप ना कर
तू हिम्मत कर और आगे बढ़,
अपनी मंजिल को फतह कर
मुश्किलें तो बहुत आयेंगी मंजिल-ए-पथ पर,
संघर्ष कर उन्हें मात दे,
मुश्किलों को उनकी औकात दे,
थकना ना कभी झुकना ना कभी,
मंजिल के पहले रुकना ना कभी
बहुत होंगे तुझे हताश करने वाले,
तेरी मेहनत का परिहास करने वाले
उन पर तू अब ध्यान न दे,
उनकी बातों पर कान न दे
बस बढ़ता जा तू बढ़ता जा,
मंजिल की सीढ़ी चढ़ता जा
तू हार का अब अनुताप ना कर,
यों ही इस पर विलाप ना कर।

कविता

अविभाज्य

सृष्टि नायक

-- *बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष*

तुम शक्कर, मैं मिठास
तुम आयत, मैं अरदास
तुम वंशी, मैं बाँस
तुम रंगरेज़, मैं रंगयुक्त हाथ
तुम घूँघरू, मैं झनकार
तुम घटा, मैं आसमान
तुम सौरभ, मैं उत्तमांश
तुम वृन्दावनी सारंग, मैं श्रृंगार
तुम कुमुद, मैं चाँद
तुम राधा, मैं श्याम
तुम अधर, मैं समतल एहसास
तुम शक्ति, मैं शक्तिमान
तुम काजल, मैं मतवाले नैन
तुम गीत गोविन्द, मैं जयदेव
तुम उफनती गंगा, मैं वेग
तुम अकारण, मैं प्रेम --

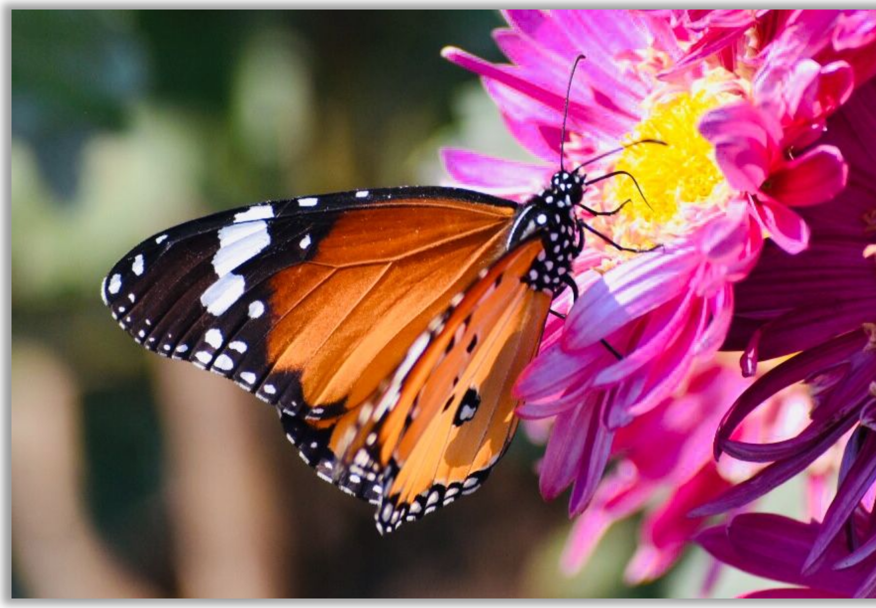

लेख

लोकतंत्र की दूसरी लहर

मुस्कान चौरसिया

--- *राजनीतिक विज्ञान विशेष, तृतीय वर्ष*

लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिससे हम आप सभी अवगत हैं। लोगों को, लोगों के लिए और लोगों द्वारा चलाए जाने वाली शासन को लोकतंत्र कहते हैं। 2007 मैं संयुक्त राष्ट्र ने लोकतंत्र को परिभाषित करते हुए इसे एक वैश्विक मूल्य बताया है। जो लोगों की स्वतंत्र रूप से व्यक्त की गई अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को निर्धारित करने और जीवन के सभी पहलुओं में उनकी पूर्ण भागीदारी पर आधारित है। आज पूरे विश्व में 15 सितंबर को अन्तर्राष्ट्रीय लोकतंत्र के रूप में मनाते है। इसका कोई एक आदर्श रूप नहीं होता है। कोई देश लोकतंत्र को संसदीय सरकार द्वारा तो, कोई देश राष्ट्रपति सरकार द्वारा, तो कोई देश दोनों तरह के सरकार

को स्थापित करके लोकतंत्र को बढ़ावा देता है। किसी देश में संघवाद है तो कहीं एकात्मक तो कहीं विकेंद्रीकरण। लोकतंत्र के प्रणाली को अपने अनुसार यथासंभव चलाने का यह सारे अलग-अलग रूप हैं।

लोकतंत्र की शुरुआत भले ही पश्चिम देशों के द्वारा की गई हो परंतु इसे हर देश ने अपनी अपनी सहूलियत के अनुसार अपनाया है। और इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए जब हम और आप विकेंद्रीकरण और विकेंद्रीकृत सरकार के बारे में राजनैतिक विज्ञान में Peter Ronaldo D'Souza को पढ़ते और समझते है तो समझ पाते है कि किस प्रकार से विकेंद्रीकरण को लोकतंत्र की दूसरी लहर बताया गया है। विकेंद्रीकरण अर्थात् जब हम कार्यों को, शक्तियों को केंद्रीय स्थान या प्राधिकार से हटाकर पुनः / स्थानी निकाय को देने की प्रक्रिया को विकेंद्रीकरण कहते हैं।

भारत के परिपेक्ष में विकेंद्रीकरण का मूलभूत आधार 73rd और 74th संवैधानिक संशोधन रहा, जिसमें 11वीं सूची जोड़ कर हमने पंचायती राज व्यवस्था को अपना विकेंद्रीकरण मूल आधार माना। जिसमें 3 स्तरी सरकार का होना, 1/3 सीट्स महिलाको के लिए आरक्षित होना, बाकी दलित और पिछड़े वर्गों के लिए निर्धारित सीटे आरक्षित होना - आरक्षण, राज्य निर्वाचन आयोग, राज्य वित्त आयोग का होना भारत के विकेंद्रकरण को परिभाषित करता है। जिसका आरंभ ना तो किसी दबाव समूह से ना तो आंदोलन के प्रक्रिया से द्वारा हुआ बल्कि बुद्धिजीवि वर्ग और सार्वजनिक नीति निर्माता के प्रयासों से शुरुआत हुआ। जिसका नीव 'नीचे से चढ़ाव' के नीति पर खड़ा हुआ अर्थात् जमीनी स्तर से आरंभ हुई नयी लोकतंत्र जो कहलाई 'लोकतंत्र की दूसरी हवा'। कहने के पीछे का उद्देश्य यह रहा है कि विकेंद्रीकृत लोकतांत्रिक व्यवस्था में 33% महिलाएँ, दलित व पिछड़े वर्ग के लोग शामिल हैं जिन्हें निम्न और उत्पीड़ित दृष्टिकोण से देखा जाता है, परंतु जब यह लोग सत्ता में आते है तो यथार्थ व असली समाज का प्रतिनिधित्व होता है। भारत जो की गाँव में बसता है। क्यूँकि आज भी 65% आबादी ग्रामीण क्षेत्र से आते है इसलिए गाँव के पैमाने पर पंचायत को और शहर के पैमाने पर नगरपालिका को पोषण देने की आवश्यकता है। अब यह तो बात हो गई अच्छी भली विकेंद्रीकरण के बारे में पर इसका दूसरा पहलू है जो खामियाँ दर्शाती है।

मुख्यत: विकेंद्रीकरण की खामियों की बात करें तो यह सिर्फ लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की बात करता है बल्कि विकेंद्रीकरण ऐसा होना चाहिए जहाँ प्रशासनिक, लोकतांत्रिक, वित्तीय स्तर पर विकेंद्रीकरण हो। जिससे निष्कर्ष परिणाम निकल कर आएगा जो स्थानीय व्यवस्था को शक्ति प्रदान करेगा। दूसरी ओर जटिल जाति व्यवस्था और पितृसत्तात्मक समाज ने विकेंद्रीकरण को शक्ति प्रदान करने में बाधा बनी है। उदाहरण के तौर पर हमें अपनी समाज में बहुत सारे पंचायती राज में यह देखने को मिलता है कि किस प्रकार से सरपंच की कुर्सी जब दलित आरक्षित होती है तो उसे किस प्रकार से सामाजिक जटिलता का सामना करना पड़ता है। वहीं दूसरी ओर जब महिला को सिर्फ एक 'shadow face' तक ही रख कर पुरुष सत्ता संभालता है तो ऐसा कह पाना कि विकेंद्रीकरण पूरी तरीके से एक सफल प्रयास से आगे बढ़ रहा है तो वह गलत है। परंतु यह कहना भी सही नहीं कि वह पूरी तरीके से असफल है क्योंकि बाकी जगह ऐसी भी पंचायत और नगरपालिका है जो एक आइडियल मॉडल बनाने में बखूबी आगे बढ़े हैं। बस जरूरत है कि किस प्रकार से नीति को बनाया और चलाया जाए जिससे वह जवाब देगी और नई लोकतांत्रिक व्यवस्था को अच्छे तरीके से प्रदर्शित कर सके।

विकेंद्रीकरण एक दूसरा लहर है कि किस प्रकार से लोकतंत्र पूरी तरीके से एक असफल या बुरा शासन प्रणाली नहीं है बल्कि जरूरत है तो सुधार की और वह सुधार लोगों से आएगा क्योंकि यह लोगों के द्वारा चलाए जाने वाली शासन प्रणाली है। जब तक हमें लोकतंत्र से एक अच्छा और बढ़िया दूसरा विकल्प नहीं मिल जाता तब तक जरूरत है कि ऐसे ही लहर आती रहें और लोकतंत्र की व्यवस्था को और बेहतर बनाती रहे।

कविता

संगीत से

पार्थ अग्रवाल

-- *बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष*

मनुष्य का जन्म संगीत से,
मनुष्य का मरण संगीत से।
सात स्वरों की दुनिया में,
ईश्वर का अस्तित्व संगीत से ।।

बादलों के गरजने की आवाज़ संगीत से,
समुद्र के ठहरने की गीत संगीत से।
संगीत ही दुनिया की सच्चाई है,
पृथ्वी को जन्नत बनाने वाली प्रकृति संगीत से ।।

माँ की लोरी, पिता की डाँट संगीत से,
बचपन की खिलखिलाती हँसी संगीत से।
संगीत है बचपन की अप्सराओं का गहना,
रोने की आवाज़ और हँसने की चरमराहट संगीत से।।

कोयल की मधुर आवाज़ संगीत से,
जंगल के जीवन का उच्चारण संगीत से।
संगीत है जीवों की ज़िंदगी और मरण का सवाल और जवाब,
रात के कीड़ो की किर्किराहट संगीत से।।

हृदय के तट तक पहुँचने वाली कश्ती संगीत से,
ईश्वर को याद करने का रास्ता संगीत से।
संगीत लाजवाब है, मनुष्य का विकास है,
संगीत से ही दिन और संगीत से ही रात है।।

आँधी के हँसने की आवाज़ संगीत से,
बारिश के रोने की धुन संगीत से,
संगीत ही सुंदरता है आकाश के कोख से निकली प्राकृतिक संरचना की,
तूफ़ान की फुर्ती, शक्ति और सहजता है संगीत से।।

Poem

Of all that remains

Smridhi Goel

-- *B.Com (P), IIIrd Year*

Her picture burned and ebbed away,
Till Her smile smoldered, Till her eyes were beads of fire,
It went up in flames, yet ashes remained.

A storm came and wrecked my life,
Unearthed the wisdom of my gracious trees,
enslaved the beauty of my sublime flowers,
A whirlwind of bedlam spun around me,
Youthful leaves were gone, silent weeds remained.

I have been gashed all over,
And tattered from within,
My skin speaks of bloodshed,
And my heart screams of ache,
My wails were gone, stubborn scars remained.

I have cried a lot,
Then and now
I cry and cry,
hard and low,

Every whimper being unique and distinct,
From soundless, to stifled, to muffled, to heartbreaking,
All tinctured with the same darn misery
My tears were gone, their wetness lingered and sting remained.

I craved for love and understanding,
Roses and rainbows that were never mine,
Frail threads were tested by time
My expectations faded and decayed,
My home was gone, a house remained.

The girl in that photograph was my wife,
Unseasonably, her final destination came,
She left me on my own,
Her soul moved on, my emptiness remained.

Life is a story of struggles
Of endless questions and troubles,
when all is gone, there is nothing to lose,
In my garden of grief and ruin,
While stuck in past, i prayed for better tomorrows,
My present kept calling,
Until i finally chose to listen,
And let in the glorious light of day,
My worries, my fears are gone, hope remains.
In a journey of simple abundance, my life awaits!

❖ *तानाशाह एक डरपोक आदमी होता है। अगर पाँच गधे भी साथ-साथ घास खा रहे हों तो तानाशाह को डर पैदा होता है कि गधे भी मेरे खिलाफ़ साजिश कर रहे हैं। हालांकि गधे अपनी बिरादरी वाले के साथ साजिश नहीं करते। - हरिशंकर परसाई* ❖

<u>लेख</u>

मातृभाषा सीखने और संरक्षित करने का महत्व।

अमित कुमार

--- *बी. ए. प्रोग्राम, तृतीय वर्ष*

आज के समय, पूरे विश्व में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है। भारत में एक चर्चित कहावत है कि यहाँ ४ गज की दूरी पर पानी और चार कोस की दूरी पर बोली बदल जाती है। भारत देश विविधताओं वाला देश है। यह विभिन्न संस्कृतियों व भाषाओं के सामंजस्य से भरा देश है, यहाँ उत्तर में उर्दू, पंजाबी, मैथिली, मगही व हिंदी व इत्यादि भाषाएँ बोली जाती है, और दक्षिण में बंगाली तेलगु, तमिल, मलयालम व उड़िया इत्यादी भाषाएँ बोली जाती है।

एक व्यक्ति अपनी मातृभाषा के बदौलत, अपने क्षेत्र से अपने आपको जुड़ा महसूस करता है, उसकी एक विशिष्ट पहचान बन जाती है, मातृभाषा केवल मात्र भाषा नहीं, अपितु यह तो माँ की भाषा है। बाल्यावस्था में जब एक बालक को चोट लगती है तो वह पीड़ा में माँ शब्द का उच्चारण करता है और साथ में वह अपनी मातृभाषा में ही अपनी पीड़ा को व्यक्त करता है, न कि किसी अन्य भाषा है। लेकिन जब बालक अपने व्यक्तित्व के विकास करने के लिए विद्यालय की और अग्रसर होता है तो वह मातृभाषा से कटना शुरू हो जाता है। क्योंकि वह अपने पाठ्यक्रम को अन्य भाषा में पाता है, जिसके परिणामस्वरुप वह रट्टू व्यवस्था का शिकार हो जाता है। आगे चलकर वह अपनी मातृभाषा के प्रति हीन भावना रखने लगता है, उसके भीतर स्वतः यह धारणा बन जाती है कि मेरी मातृभाषा न मेरी शिक्षण संस्थान काम आयी और न ही मेरे रोजगार सृजन में काम आएगी। हालांकि वर्तमान सरकार नई शिक्षा नीति २०२० लाई है, जिसके तहत बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में होगी। जिससे वह अपनी भाषा से अपने आपको को जुड़ा महसूस करेंगे और पाठ्यक्रम को अच्छे से अवशोषित करेंगे। जिस प्रकार दिल्ली के सरकारी स्कूलों में देशभक्ति पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है, जिससे विद्यार्थी न सिर्फ स्वाधीनता संग्राम सेनानी के बारे में पढ़ेंगे, बल्कि उनके अंदर भी देशभक्ति की भावना आएगी। ठीक उसी भाँति मातृभाषा पाठ्यक्रम भी स्कूल व कॉलेजों में पढ़ाना चाहिए जिससे विद्यार्थी न सिर्फ मातृभाषा को जान सके, अपितु उससे जुड़ी संस्कृति व गौरवगाथा के बारे में पढ़े जिससे उनके भीतर रोचकता व भाषा के प्रति प्रेम बढ़ेगा।

आज भूमंडलीकरण के दौर में एक तरफ एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से मेलजोल बढ़ रहा है और वही दूसरी तरफ कुछ मातृभाषाओं पर संकट-सा मंडराने लगा है। क्योंकि भारत में उदारीकरण से सेवा क्षेत्र में एक दम से उछाल आया है। कई सारी बहुराष्ट्रीय कंपनी भारत में अपने सेवा केंद्र खोल रही हैं। जिससे युवा वर्ग रोजगार के लिए अंग्रेजी भाषा की ओर अग्रसर हो रहा है और मातृभाषा से दूर हो रहा है। धीरे-धीरे वह अंग्रेजी संस्कृति और अंग्रेजियत की ओर आकर्षित होता है और मातृभाषा व संस्कृति को हीन दृष्टि से देखना शुरू कर देता है। हमें मातृभाषा को रोजगार की भाषा बनाने में अपने योगदान देना चाहिए, जिससे मातृभाषा को संरक्षित करने की आवश्यकता नहीं होगी। वह अपने आप फलेगी-फूलेगी। केवल मात्र २१ फरवरी को ही मातृभाषा न सोचें, अपितु वर्ष के ३६५ दिवस इसके बारे में सोचेंगे तो मातृभाषा को संरक्षित करने की आवश्कता ही नहीं होगी।

कविता

अपने ही उसूलों को निगल रहा है आदमी

अमन सिंह तोमर

बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्

वक्त को वक्त से छल रहा है आदमी,
अपने ही उसूलों को निगल रहा है आदमी।

दिल से कैसे बात करें इस गुजरते दौर में,
अपनी ही ऊँचाइयों में ढल रहा है आदमी।

मौत लेकर हाथ में ज़िंदगी की बात है,
इस दौर के आदमी को खल रहा है आदमी।

वक्त की अंगड़ाइयाँ ग़ैरों से मिल गले,
प्यार से इस मुल्क़ में जल रहा है आदमी ।

सहन से उठी सदा जलती हुई बचाव में,
अफ़सोस में हाथ अपने मल रहा है आदमी।

नामालूम किसने क़त्ल किया इंसान का,
दाग़ छुपाए ख़ून के चल रहा है आदमी।

अपनी ही औलाद के इंसा ने बाँट किए,
आदमी के स्वाद को तल रहा है आदमी।

अपनी की भीड़ से भीड़ ही डरी हुई,
तेज़ाब में हड्डी-सा गल रहा है आदमी।

गोस्तखोरों के लिए जिस्मों की कमी नहीं,
डिब्बों में बंद गोश्त-सा घुल रहा है आदमी।

बात करते है उसूल की, बखानते उसूल सब,
उसूल है अडिग खड़ा, पर हल रहा है आदमी।

मैं, मैं और मैं ही बस प्रधान रह गया है,
इस अहंकार की ज्वाला से जल रहा है आदमी।

जकड़ी हुई जंजीरों में प्रधान स्वार्थ की जुबान,
और भी हैवान को बल दे रहा है आदमी।

जात पात कुछ नहीं, एक जान होनी चाहिए,
फिर भी धर्म के संघर्षों में पल रहा है आदमी।

स्वप्न सोचा था राम राज्य का, क्या हुआ,
इस दौर में इंसानियत को मसल रहा है आदमी।

कविता

यादें

दिव्यांशी तिवारी

बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष

किट किट करने वाली सर्द रात में
चाय की गर्माहट-सी,
तो कभी जीवन की नीरसता में
शक्कर-सी घुल जाती हैं यादें!

कभी लेती हैं सिसकियाँ
तो फिर खिलखिलाती भी हैं।
कोई करदे यदि हँसी ठिठोली
तो नई नवेली दुल्हन-सी शर्माती भी हैं!

भोर के तारे और सांध्य चांदनी के
झूठ मूठ के वादों में भी बन जाती हैं यादें!

भीगी भीगी रातों की सीलन में
सूखेपन का एहसास दे जाती हैं यादें।

जीवन के हर पड़ाव में,
उँगली में पड़े छल्ले-सी कस जाती हैं यादें!

खींच न ले कोई अतीत के पन्नों से इन्हें
इसलिए, ये झाँकती भी न हैं झरोखों से!

यादें हैं, याद तो आयेंगी
कभी हँसाएँगी, तो कभी रुलाएँगी।

❖ *लोहे का स्वाद / लोहार से मत पूछो / उस घोड़े से पूछो / जिसके मुँह में लगाम है। - धूमिल* ❖

Blog

Life Happens Slowly and Then All at Once

Vipna

-- *Hindi Hons, 2nd year*

I couldn't possibly tell you how many times in my life I have thought to myself; "Is this ever going to end?" Or "will I ever stop feeling this way?" If I sit and really think about it, every stage of my life and I'm sure yours too, has been marred with these moments, and the subsequent feeling that time is never really on your side, but constantly, begrudgingly working against you.

Whether it was when I was a small child, waiting at the window for the rain to clear so I could go outside and play. Or a teenager, waiting by the phone for a friend to call me back.

When I was living through a pandemic, as we all were. A collective worry that took up the space between my neck and my naval, a worry I am sure I shared with billions. And now, while life is seemingly good, or at least better than it was.

We linger in our memories just as much as they linger within us, and at times it's only our scars that truly remember. When we learn to smile again, laugh again, and fall asleep without a particular worry that followed us for months, years. Gone, as though it never mattered in the first place. But time does that, it slows down in ways that you're never going to be able to explain, and then all of a sudden a week has passed, a month, a year, ten years and while nothing, in particular, has really changed, everything is different.

The sun continues to rise, the seasons continue to change and we lose time like it means nothing to us, simultaneously wishing it away and remarking that the good times never last long enough. I'm sure as you sit here today there are things that you once felt you would never be free from, that you are now struggling to remember in all their fine detail because life does that, it goes on. Relentlessly, and it is our curse to both remember and to forget.

कहानी

ननिया

अक्षय

-- *बी ए प्रोग्राम, प्रथम वर्ष*

केशु भागा-भागा गाँव के चबूतरे के तरफ जा रहा था जहाँ जाकर वह हाँफ रहा था जोरो से, मानो ना जाने कितने कोसों की दूरी तय करके आ रहा हो। वो भी चीते की रफ्तार से। चबूतरे पर बैठे बुजुर्ग लोगों ने एक स्वर में पूछा "क्यों क्या बात है केशु, क्या हुआ?" केशु डर रहा था। उसकी आवाज में तेजी नही थी। सभी घबरा गए, तभी दौड़ा-दौड़ा रघु आया जो केशव का दोस्त था। रघु बोला- "हम दोनो नदी के उस पार अपने भैंस चराने गए थे, जहाँ हमें एक ज़ख्मी आदमी मिला, शायद वे सिक्की चच्चा थे। चेहरा साफ नही दिख रहा था। वे बोले कि गाँव में जाकर सबको आगाह कर दो कि सुतरुपुर गाँव में कुछ विदेशी डाकू रह रहे हैं और अपने गाँव में वे हमला करने वाले हैं। शायद कल जब उनके और भी साथी आ जाएँगे।" सब का सर निराशा से झुक चुका था। अब शायद उनमे लड़ने की हिम्मत नही थी।

दो वर्ष पहले की ही बात थी जब उन पर डाकुओं का हमला हुआ था। सबने लड़कर उन्हें वापस भेजने का फैसला किया था परंतु हुआ वही जो सम्भव था और दुखकारी भी। गाँव ने अपने सभी जवान कंधे खो दिए, ना जाने कितने सिंदूर उजड़ गए और कितने ही बच्चों के सर से बाप का साया उठ गया।

लाछा ने रघु को पूरे गाँव को वहाँ चबूतरे पर बुलाने के लिए कहा। रघु के साथ कुछ और भी लोग गए। जिसके घर मे कोई मर्द नहीं था, वहाँ से औरतें आयी थीं। बैठक तो बुला ली गयी परंतु शायद निर्णय लेना बड़ा मुश्किल था। सभी दुखी बैठे थे। तभी 16 वर्षीय केशु खड़ा हुआ। पतला-दुबला शरीर बाल पसीने से भींगा हुआ। नीचे धोती और कंधे पर एक गमछी। बोलना शुरू किया -"हम डरें हुए हैं, उस भयानक सदमे से उभरें नहीं हैं। हम में लड़ने की ताकत नहीं है परंतु हम उनका इंतजार नही कर सकते। हमारे पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है। लड़े तो मरेंगे दुश्मन की तलवारों से। डरेंगे तो मरेंगे भूख से। मैंने लड़ना चुना है, और आपने?" केशु की माँ अपने बच्चे की हिम्मत पर गर्व कर रही थी। मन ही मन सोच रही थी कि उसके पिता आज होते तो उन्हें बड़ी खुशी होती। सभी एक साथ खड़े हुए और ज़ोर से बोला "दुर्गे माता की जय"। सभी ने मिलकर रात में ही उन पर हमला कर देने की योजना बनाई। पूरा गाँव हमला कर देने की तैयारी में लगा था। सभी हथियार जुटा लिए गए। अब बस रात होने का इंतज़ार था। एक ख़बरी ने सुतरुपुर गाँव जाकर चुपके से ख़बर पहुँचाया कि ननिया गाँव के लोग आज हमला करने वाले हैं तो उनका साथ देने के लिए तैयार रहियेगा। दोनो गाँव तैयार था। रात का समय आया। केशु अपनी कमजोर परंतु शाहसी सेना का नेतृत्व संभाल रहा था। हमला हुआ, सुतरुपुर गाँव वालों ने साथ दिया, कुछ डाकुओं को मार गिरा दिया गया और कुछ भाग गए। केशु बड़ी जांबाजी से लड़ा किसी योद्धा की तरह। परंतु एक तीर उसके गले के आर पार हो गयी। पूरा गाँव दुखी था।

केशु ने अपने साहस और बलिदान से पूरे गाँव को बचा लिया और सभी के दिलों में अमर हो गया।

कविता

दिल्ली तुझे एक ख़त देना था

अनंत कुमार त्रिपाठी

राजनीतिक विज्ञान विशेष, प्रथम वर्ष

ये दिल्ली तुझे एक खत देना था,
तूने झूठ कहा था, तुझे सच देना था,

कि न जाने कितनी उम्मीदों का बोझ है तुझ पर,
पल दो पल नही हर रोज़ है तुझ पर,

आते है लोग तेरे दामन में ले के सपने सभी,
आ के तेरे पास लोग भूल जाते है अपने सभी,

तेरी हर गली में न जाने कितने अनेकों ख़्वाब दफ़न है,
यहाँ कल जीने के वास्ते चैन और सुकुन आज दफ़न है,

यहाँ मौजूद हर शख़्स को सोने के लिए बड़ी मुश्किल से एक रात मिलती है,
मिलती है अक्सर ग़ैरों की साथ न कभी अपनो के साथ मिलती है,

तेरी पनाह में आ के हो गए है घर से इतना दूर कि बड़े मुश्किल से अब घर की याद मिलती है,
और हो जाए जो कभी माँ-बाप से बात तो लफ़्ज़ों में उनके मेरे लिए बस चिंता की बात मिलती है,

यहाँ पल-पल जीने के वास्ते खुद को मारना पड़ता है,
तन्हाई का आलम कुछ यूँ है कि खुद की परछाई से भी डरना पड़ता है,

यहाँ रहता है कौन मेरे कमरे के बगल में अब मुझे पता नहीं होता,
फूँक-फूँक के रखता हूँ कदम यहाँ अब पहले जैसा दिल मेरा सब पे फ़िदा नही होता,

न मयस्सर यहाँ शादाब न मेरे गाँव जैसी यहाँ शाम होती है,
ग़ैरों की क्या बात करें यहाँ तो अपनो से भी मुलाकाते बहुत आम होती हैं,

होता है किसी के हाथ में आईफोन तो किसी को मुक़म्मल दो वक्त का खाना भी नहीं,

दिल चीखता है मेरा कि जो चले जाना यहाँ से तो दोबारा लौट के यहाँ कभी वापस आना भी नही,

यहाँ लंबी इमारतों के पीछे किसी के पसीने की बूँद दफ़न है ,
गाँव में कभी सपने संजोने वाले लड़के का यहाँ आकार जुनून दफ़न है,

पर इस दफ़ जुनून को शायद तुझे सपने सजोने का हक़ देना था,
ये दिल्ली तुझे एक ख़त देना था,
तूने झूठ कहा था तुझे सच देना था।

कविता

क्या यह वाकई अमृत काल है?

शिवम झा
-- *बी ए प्रोग्राम, प्रथम वर्ष*

आधुनिकता के इस दौर में
क्या धीमी पड़ रही चाल है?
क्या सब चंगा-सी देश में
या फिर सच में मुद्दों का अकाल है ?
क्या ट्रेलर है ये अच्छे दिनों का ?
या यह वाकए अमृत काल है ?

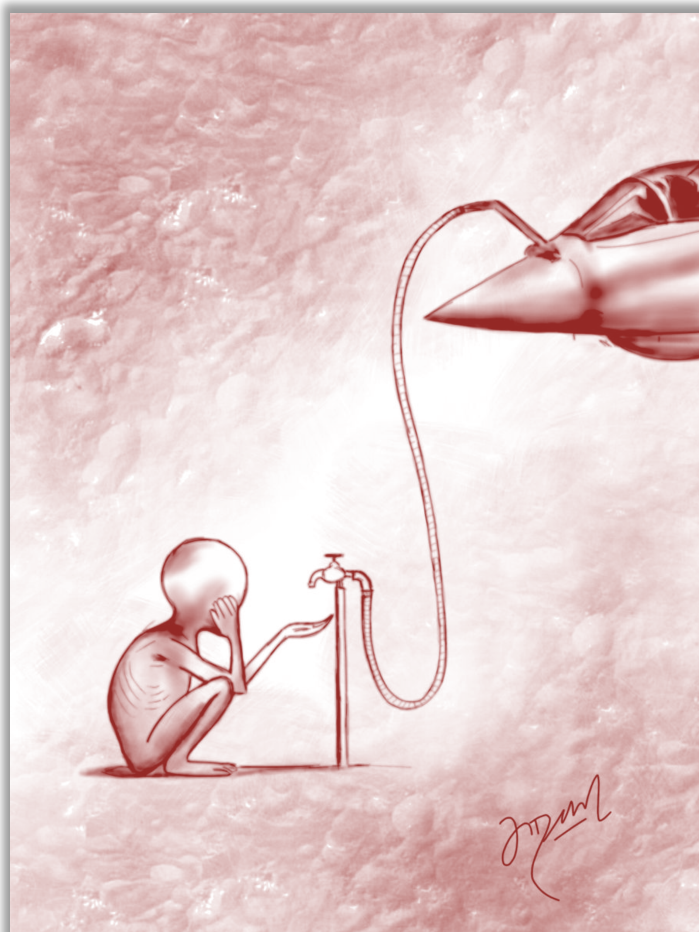

क्या मंहगाई की मार है? क्या युवा बेरोजगार है ?
क्या जनता जनार्दन का हो रखा बुरा हाल है ?
क्या त्रस्त है लोग इस बेलगाम मंहगाई से ?
या फिर वोटरों को मुफ्त राशन का मलाल है ?
क्या ट्रेलर है ये अच्छे दिनों का ?
या यह वाकए अमृत काल है ?

क्या समाज सुधार से ज्यादा सरकार को
अपने प्रचार प्रसार का ख्याल है ?
क्या सच में धाँधली होती है चुनाव में ?
या फिर यू ही ईवीएम पे बवाल है ?
क्या ट्रेलर है ये अच्छे दिनों का ?
या यह वाकए अमृत काल है ?

क्या कठपुतली है एजेंसियाँ सरकार की ?
क्या टीवी मीडिया के पत्रकार दलाल है ?
क्या हो जातें हैं देशद्रोही लोग अपने ही देश में
अगर कोई सरकार के विरुद्ध पूछते सवाल है ?
क्या ट्रेलर है ये अच्छे दिनों का ?
या यह वाकए अमृत काल है ?

क्या सच में सुपरपावर बन रहा है हमारा भारत ?
या फिर गरीब दिनोदिन होते जा रहे कंगाल है ?
क्या अतिक्रमण के नाम पे आक्रमण हो रहे है गरीबों पे
या फिर स्मार्ट सिटी के लिए बुलडोजर कर रहा कमाल है ?
क्या ट्रेलर है ये अच्छे दिनों का
या यह वाकए अमृत काल है?

25 करोड़ लोग भूखे सो रहे है आज हमारे देश में
क्या ये भी गांधी - नेहरु की मिसाल है ?
और वैसे तो धर्मनिरपेक्ष देश है हमारा भारत
फिर क्यों विवाद का मुद्दा भगवा और हलाल है ?
क्या ट्रेलर है ये अच्छे दिनों का
या यह वाकए अमृत काल है ?

कविता

हिंदू - मुस्लिम

अनिशा सिंह
-- *बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष*

हिंदू-मुस्लिम करने वालों
एक बात मुझे बतला दो तुम..
कहती है क्या हवा कभी
मैं हिंदू के घर जाऊँगी ?
कहती कभी क्या आग की ज्वाला
बस मुस्लिम घर करूँगी उजियारा ?
कहती है क्या कभी ये पृथ्वी
हिंदू नहीं खड़ा होगा मुझपे ?

चंदा कहता क्या मुस्लिम से
मै हिंदू का हूँ भईया ?
कहती प्रकृति क्या तुमसे
निकल जाओ इस दुनिया से ?
पर्वत कहता क्या हिंदू से
तुम मुझमें चढ़ मत आना ?
रही मानसिकता जिसकी जैसी
वो वैसा होता चला गया !
नहीं है फ़र्क़ किसी में भईया
है सब धरती पे ही जन्में
लाल हो तुम अपनी माँ के
है जाति तुम्हारी भारतीय की !
धर्म तुम्हारा कर्म है
नहीं है कोई हिंदू मुस्लिम !
जब प्रकृति, हवा, चंदा सबका
तो हिंदू मुस्लिम कैसे बंट गया ?
कहते थे हिंदू मुस्लिम भाई-भाई
ये नारा आख़िर कहाँ गया ?
कहाँ गया ?

कविता

बेटियाँ ही दोषी कहलाती हैं

अनिशा सिंह
-- *बी ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष*

चट्टान-सी सुदृढ़ दिखती है कभी
कभी मोम-सी पिघल जाती है।
खिलखिलाती रहती है अक्सर
पर अंदर ही अंदर टूट कर बिखर जाती है।
वह बेटी है साहब,
बेटों की चाह में अक्सर पैरों तले कुचल दी जाती है।

जीवन के हर क्षेत्र में अव्वल आती है
फिर भी ना जाने क्यों उसके सपनों की अक्सर बलि चढ़ा दी जाती है।

कुछ कहना चाहती है,
अपने हिस्से का जीवन वह भी तो जीना चाहती है,
"तुम लड़की हो" यह सुनकर हर बार चुप हो जाती है।
वो लड़की है जनाब,
अपने मन की बात कहाँ कभी कर पाती है।

कभी अकेला देख उस मासूम को दरिंदे अपनी हवस मिटाते हैं
नीची जाति के हाथों से पानी तक पीना पसंद नहीं जिन्हें,
हवस के नाम पर होंठ से होंठ मिलाते हैं,
उस मासूम के जिस्म को नोच खाते हैं।
चीखती है चिल्लाती है पर उसकी चीख़ों को यह समाज कहाँ सुन पाता है,
लाख कोशिश करके भी वह अपनी आबरू बचा नहीं पाती है
फिर भी न जाने क्यों इस सो-कौल्ड समाज में बेटियाँ ही दोषी कहलाती है।
फिर भी ना जाने क्यों इस समाज में बेटियाँ ही दोषी कहलाती हैं।

मुँह माँगा दहेज लेकर ससुराल वो जाती है
फिर भी ना जाने क्यों चंद रुपयों की ख़ातिर बेटियाँ जला दी जाती है।

आज बढ़ चुका है विज्ञान इतना
फिर भी लड़की पैदा होने की कसूरवार औरत ही ठहराई जाती है।
ना जाने क्यों इस समाज में बेटियाँ ही दोषी कहलाती है।

कभी बेटी, कभी बहू, कभी पत्नी तो कभी माँ बनकर
अपना हर फ़र्ज़ निभाती है।
फिर भी ना जाने क्यों इस समाज में बेटियाँ ही दोषी कहलाती हैं।
बेटियाँ ही दोषी कहलाती हैं।

❖ *हम जो कुछ भी हैं वह हमने आज तक क्या सोचा इस बात का परिणाम है। यदि कोई व्यक्ति बुरी सोच के साथ बोलता या काम करता है, तो उसे कष्ट ही मिलता है। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध विचारों के साथ बोलता या काम करता है, तो उसकी परछाई की तरह ख़ुशी उसका साथ कभी नहीं छोड़ती।*

- महात्मा बुद्ध ❖

कहानी

5वाँ दिन

अक्षय

--- *बी ए प्रोग्राम, प्रथम वर्ष*

भाई पैसों की बहुत जरूरत थी, तेरी मदद हो जाती तो......" - राज फोन पर अपने किसी दोस्त से बात कर रहा था, तभी फोन कट गया। मैं पास में ही था, सुन रहा था और देख भी रहा था, राज के उस मायूस चेहरे को। राज ने मुझसे कहा - "शायद कोई नेटवर्क इशु होगा, रमेश ऐसे मेरा फोन नही काट सकता। मैं फिर से कॉल करके देखता हूँ।" फोन का बंद आना उसकी आशा के विपरीत था। पर मेरी नहीं, क्योंकि 14 अन्य दोस्तों का जवाब भी कुछ ऐसा ही था। अगला नंबर उसने टाइप करके डिलीट कर दिया, कॉल नहीं किया। मैंने उसे समझाया कि हिम्मत से काम ले कुछ न कुछ बंदोबस्त हो जायेगा। दरअसल उसे बैंक का लोन चुकता करना था जल्द से जल्द। आपलोग सोच रहे होंगे कि मैं कैसा मित्र हूँ जो अपने दोस्त को मदद नहीं कर रहा। मैं तो बिलकुल ही मदद करता परंतु मेरी हालत तो उससे भी बदतर थी। फ़र्क़ बस इतना था कि मुझे गरीबी में जीने की कला आ गई थी और वो नया-नया गरीब था।

मैं फिर वहाँ से अपने रूम पर चला गया। मुझे आज भी स्पष्ट रूप से याद है कि जब मैं उसे पैसे का उचित प्रयोग (मनी मैनेजमेंट) की सलाह देता था और वो कहता था -"जीने के हैं चार दिन...।" (उसने शायद कभी 5वें दिन का सोचा ही नहीं)। कुछ देर तक बहस चलती थी और मैं हार जाता था, या फिर यूँ कहें कि दोस्ती के लिए हारना पड़ता था। आज राज भी सोचता होगा कि यदि वो उस दिन हार जाता तो शायद आज जीत जाता। परिस्थितियाँ पहले ऐसी नहीं थी। राज की नौकरी थी, एक निजी कम्पनी में और अच्छा खासा वेतन। इस समय उसकी सारी उंगलियाँ घी में होती थी। शायद ही कोई ऐसा दिन जाता जब कोई जश्न ना हो। मैं बहती गंगा में हाथ धोने से बचता था क्योंकि जब गंगा गंदगी का हिसाब मांगेगी तो मैं उत्तर देने में असमर्थ रहूँगा। ज़िंदगी मदमस्त चल रही थी। फिर कोरोना की लहर आई भारत और पूरे देश में लॉकडाउन लग गया। कम्पनियाँ घाटे में जा रही थी। कारोबार ठप पड़ रहे थे। लोग बेरोजगार हो रहे थे। इन्हीं में से एक राज भी था। वह बेरोजगार हो गया, असहाय। जब नौकरी थी तब, तब लोन की किस्त चुकता हो जाता था किसी तरह। धीरे- धीरे लोन का बोझ बढ़ता गया।

"भाई तू, यहाँ आ जा"- राज का मैसेज आया । मैंने पूछा -"क्यों?", पर उत्तर नहीं मिला तो मैं चल पड़ा। वहाँ जाकर पता चला कि बैंक वालों ने नोटिस दिया है कि उसकी संपत्ति कुछ दिनों में जब्त कर ली जाएगी। उसका शरीर ढीला था। गर्दन झुकाकर शायद आँसू छुपा रहा था। मुझसे पूछा -"क्या करूँ भाई?" मैं निरुत्तर था परंतु पता नही क्यों कुछ कहने की हिम्मत भी नही हुई।

कुछ दिनों बाद वही हुआ जिसका अंदेशा था। उसकी घर व संपत्ति जब्त कर ली गई। राज बेघर था। देख रहा था सब कुछ, अंतिम बार। मैं भी उसके पास ही था। उसके आँसू सुख चुके थे। जिनसे उसके चेहरे पर लकीरें बनी गई थी। होंठ सूखे थे और गला भी। मैंने उसे अपने साथ रहने को कहा। चूंकि उसके कोई संबंधी सगे नही थे तो उसने मेरे साथ जाना ही मुनासिब समझा। हम दोनो एक कोचिंग संस्थान में पढ़ाने लगे, जिससे हमारा जीवन चल रहा था।

कुछ दिनों बाद जब लॉकडाउन खुला तो राज के ऑफिस से मेल आया कि वे फिर से कर्मचारियों को बुला रहे हैं। उसका चेहरा देखने लायक था, उसने पुनः मेल पढ़ा। उसकी खुशी उसके आँखों से छलक उठी। वो गुनगुना रहा था - "दुख भरे दिन बीते री भैया, अब सुख आयो री...."

अब एक साल बाद उसका जीवन पहले जैसा ही हो गया है, परंतु अब जश्न सिर्फ खास दिनों पर ही हुआ करते हैं। परंतु अब उसके कुछ गिने - चुने दोस्त हैं। परंतु अब उसे 5वें दिन और चाँदनी के बाद के अंधेरी रात की फ़िक्र भी है और कद्र भी।

Poem

Musings beside the lake

Evans... Evans... Evans...

Padmanabha Reddy

-- *English Hons, 3rd year*

Let us walk together
In these desolate lands
But do not ask if
I hear anything at all
Including the air on the bands,
Or the grass stuck
In these broken strands.

Can you hear me? Because the light
Has blinded me leaving without a sight!

Yes! I do have time looking,
Cooking, and gripping the lotus
In the ethereal lake where the
White swan drinks the water to
The lees with those bees
Who mark their path to Herodotus.

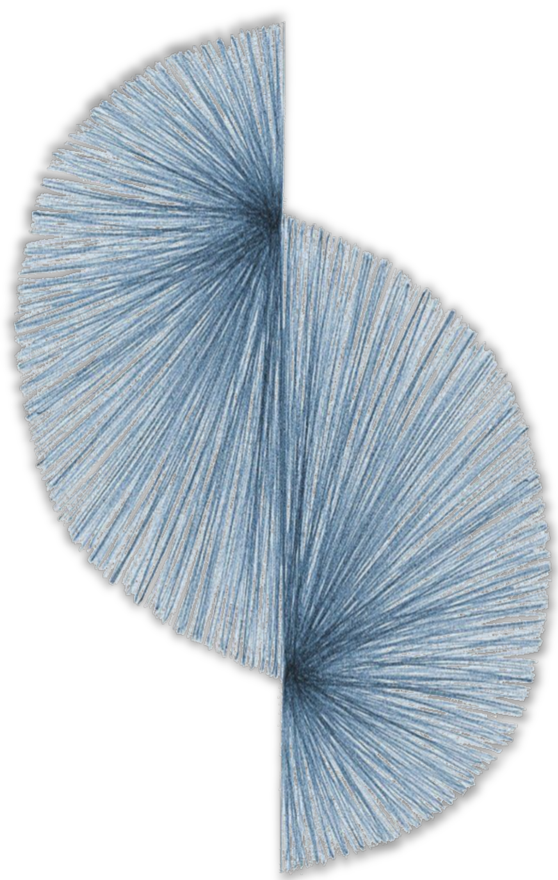

That water... water... water

Turns red with the blood of
Squirrels biting mackerel while
The otter swims away with
White spots on his head.

Can you hear me? Because the light
Has blinded me leaving without a sight!

The leaves of the tress shatter
With the west wind advancing
And bringing in a tint of chatter;
A platter full of gold and silver,
Resting on the grass while leaving
The sky and tricking it in believing -
They are still present

The sound of This West Wind is bitter
And the unending chatter a bestial litter
Have you understood?
The syntaxes? That's not what I intended!
That is not what I meant!

I am a tale told by an idiot
Who stabbed the old man as fair
As a cow; the fair skin and the foul hair
And the dark milk; a normal affair
With white spots amidst the blue sky
Reckoning the dawn of an evil dye

Let us walk again in these streets
Who are ready with its undesirable treats;
The hollow men and rusty steel, the
Banging of a tightened wheel,
Everything tastes sweet walking on four feet

Can you hear me? Because the light
Has blinded me leaving without a sight

The buffalo stands still beside
The little hill asking me to drink
Water before we leave. I had neither
Drunk them to the lees nor
Plucked out a lotus. Can you hear
My shrill voice?
Because I cannot hear yours.

I have seen the air closing
My mouth and sweat,
That water… water… water
Closes its eyes until we
Embrace her and she rips us!

कविता

बेईमानी ईमानदारी से

शुभांगी

--- *राजनीतिक विज्ञान विशेष, प्रथम वर्ष*

नैतिक मूल्य एक समाज को बनाता है
यही एक समाज की नींव कहलाता है
होते समाज निर्माण में सहायक है यह
क्योंकि हम नहीं सहन करते हैं
बेईमानी ईमानदारी से

मूल्यों की परिभाषा पर अब बदल-सी गई है
छल कपट चरम पर है
ईमानदारी पतन पर है
क्योंकि अब हम सब खूब करने लगे हैं
बेईमानी ईमानदारी से

प्रथम आने की छात्रों में लगी एक होड़ है
नकल के नंबरों को समझते अपनी शान हैं
परिश्रम करना जैसे वह भूल गए हैं
क्योंकि करने देते हैं हम उन्हें
बेईमानी ईमानदारी से

राजनीति का स्तर गिरता गया है
नेताओं ने धर्म का दामन छोड़ दिया है
चंद पैसों में ईमान भी बिक जाता है
क्योंकि देख कर भी नहीं रोकते हम
बेईमानी ईमानदारी से

सरकारी तंत्र भी भ्रष्टाचार में लिप्त है
अधिकारी की आत्मा घुस पाकर ही तृप्त है
नहीं दिखते उन्हें
अपनी इस निकृष्ट सोच में कोई दोष है
क्योंकि नहीं रह सकते वह किए बिना
बेईमानी ईमानदारी से

क्रांतिकारियों के बलिदान ने इस देश को बनाया है
सैनिकों की शहादत ने इसको सजाया है
सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए
साथ मिलकर रोकनी ही होगी हमें यह
बेईमानी ईमानदारी से

Article

POLITY OF POLITICS

Saurav Suman
--Economics (Hons), Passout

The current political scenario needs us to have an unambiguous understanding of the two important terms which are used interchangeably but have translucent separation, POLITY & POLITICS. Politics can be seen being discussed at tea stalls in INDIA, but what we are lacking as a nation is the consciousness of polity. Going through the terms, "polity" can be defined as the organizational structure of government of a state and ''politics" can defined as the methodology and activities associated with the running of a government. Precisely looking, former thrives to attain the governance at its best form possible, where Nation and the will of the people is the topmost priority, on the other hand the latter is usually attributed to your position on the political spectrum. While we incessantly recite the stereotypical definition of Democracy "of the people, for the people, by the people" somewhere we forget that above all, the government is "of the Nation, for the Nation". In the rat race of elections which seems to be a matter of death and life, the objective behind it is absent. The question is "all these for what?" or why and how we ended up here, when the fate of politics is determining the fate of Nation and why not the Nation is

above any party, any politics and above all. Why don't we rise and sink as ‘’ We the people of INDIA”? Answering the above questions will require us to objectively evaluate our entire political structure, starting from questioning the sanctity of our democratic institutions. It will give us an insight into the problems gradually rotting our system and a thorough understanding of this will provide the clarity but it could be like a mirror for all of us, to show us who we are. The series of questions need to be asked also includes the use of bookish phrases, celebrating glory but distant from reality. One such phrase is " Unity in Diversity". Every now and then, the phrase is used but one wonders, what is it that unites all of us? The answer spontaneously pops up in our minds, rights and duties given in the constitution, quest to make our lives better etc. But this house of cards shatters when one stumbles upon the ground truth. Where people in millions lack basic amenities and the state fails to ensure a dignified life, these phrases filled with pride means nothing and the pledge to reaclaim lost glory is merely a utopia.

So, the need of the hour is to rejuvenate our organisational structure and focus on providing basic amenities. No matter how trivial it sounds, basic infrastructure is that pillar without which electing the skyscraper of a developed country will be far from reality. It should be followed by a series of reforms in the judicial and policing system. Ctizens deserve a life in which they should be able to enjoy their life with liberty and state should not be able to perpetrate miscarriage of justice. In a society where we ensure equality of opportunity and dignified life to everyone irrespective of caste, creed, sex etc; individual liberty will rain supreme. Changes like these could eradicate the feeling of victimization among certain sections of society that has breeded extreme political polarization. Hence our resolve to smartly apply our knowledge of "polity" could reform our “Politics”.

❖ *एक जैसे दो चेहरों के बीच अंतर को पहचान लेना, सामूहिकता, यांत्रिकता या सामान्यीकरण से अलग एक मानवीय क्रिया को महत्त्व देना है। – प्रो० नित्यानंद तिवारी* ❖

कविता

मोलक्का-मोल का दूल्हा

अर्पित प्रतीक

-- *भौतिकी विशेष, द्वितीय वर्ष*

रिश्ते खरीदें बेचे जाते हैं यहाँ, रस्मों को कुछ ऐसे निभाया जाता है,
कहीं लड़के की रकम लगायी जाती है,
कहीं लड़की को बेचा जाता है।

प्रथाएँ हैं अलग-अलग,
पर हो रहा दोनों का ही सौदा, फिर जब वो कहलाई मोलक्की, तो वो क्यों नहीं कहलाया मोलक्का।

माँगा था जब उसके बचपन से पढ़ाई तक का खर्चा,
तभी से बनने लग गया था, वो मोल का दूल्हा, मोलक्का ।

बेटी के पिता को पैरों में गिराकर, जब कर रहे अपने ही बेटे का सौदा,
उसी दिन बना दिया था, उसे मोल का दूल्हा मोलक्का।

फिर किया जाना चाहिए, उसके साथ भी मोलक्की जैसा व्यवहार,
छोड़ना पड़ेगा उसे भी, अपना घर संसार ।

छीन लीजिए उससे माँ-बाप का दुलार, भाई-बहन का प्यार ।
भेज दीजिए उसे हमेशा के लिए ससुराल
क्योंकि बिका हुआ है उसका तन-मन, हर साँस में है क़र्ज़, लड़की वालों की सेवा करना, उसका एकमात्र फ़र्ज़

ये शादी नहीं, समझौता है।
मात्र दहेज नहीं, ये लड़के का सौदा है।

तो बंद कीजिए, सौदेबाजी, ना दीजिए उनको धोखा,
मत बनाइए किसी को मोलक्की। मत बनाइए किसी को मोलकका।

ना लगाइए रिश्तों का मोल,
क्योंकि सिर्फ़ वही होते अनमोल।

समझिए इस बात को, लड़का-लड़की एक समान,
एक जैसा उनका मान, इसी के साथ आपको मेरा प्रणाम|

कविता

ना होगा जिसमें कोई शिकवा

नोनिशा गौतम
बी ए प्रोग्राम, प्रथम वर्ष

दिल में जो दफ़न है यादें
आ गई बाहर तो ना करें फ़रियादें
ख़्वाब भी है, रुसवाई भी है
चाहत भी है, इबादत भी है
लगता है अब याद, याद बन गई है
वो पैग़ाम बन गई हैं
लगता है डर का विषय है
राज कुछ गहरे अवश्य हैं
याद को मद़फून ही रहने दो
अब शब्दों को मजबूर ना होने दो
चाहत उस श्वास की करो,
जो श्वास थम-सी गई है
करो मत खुद को इतना बेबस
की वक्त से चुरानी ना पड़े आँखें
रखो हौसला झेलने का दहशत
जिससे तिलमिला उठा जिस्म तुम्हारा
यादों की गलियों में

बन के रहो शहजादी
बुझने ना दो आशा का दीप
जो जगमगा उठे जीवन तुम्हारा
होगी सुहानी तुम्हारी रात
ना होगा जिसमें कोई शिकवा
ना होगी शिकायत की कोई बात

कविता

कोई ...

विपना

-- *हिंदी विशेष, प्रथम वर्ष*

समझदारी की बोझ हटाकर मुझसे,
दिमाग़ से कच्चा बनाए कोई।

नहीं निभानी है अब जवानी की ज़िम्मेदारियाँ,
फिर से बच्चा बनाए कोई।

अक्सर बहुत दर्द करते है डाँट कर कही हुई बाते,
बचपन की तरह मार कर समझाये कोई।

ना खाओ आज तोह किसी को फ़र्क़ भी नही पड़ता,
हाथ में दाल चावल लेकर खिलाए कोइ।

अब बड़ी नही रहना चाहती अपने पैरो पर,
बच्चों की तरह गोद में उठाए कोई।

भटकी रहती हूँ आजकल आवारों की तरह,
तलब है कंधे पर बैठाकर सैर कराए कोई।

आज तो सबके सब ज़ख़्म से भरे पड़े है यहाँ,
दरवाज़े के पीछे छिपकर भी कहकर सताए कोई।

मोहब्बत तो आज मतलब से होने लगी है,
बचपन की तरह मुझसे मोहब्बत निभाए कोई।

कविता

रोटी, कपड़ा और मकान

अभिषेक यादव

-- *वाणिज्य विशेष, प्रथम वर्ष*

सर्दी में काँप रहें, गर्मी से तप रहे, बारिश में भीगे।
सिर पर नहीं छत, भटक रहे सड़कों के किनारे।
भूखे नंगे, ज़िंदा होकर भी अधमरे से पड़े बेचारे।
कोई दे दे थोड़ा बहुत, जीवन काट रहे बस उसी सहारे।
अस्तित्व कुछ भी नहीं, अपने ही क़िस्मत के मारे।

क्या यही है मेरे सपनों का भारत, आर्यावर्त और हिन्दुस्तान ।
इक बेरोजगार के पास नहीं रोटी, कपड़ा और मकान ।
धनी मनुष्य अपने फ़ायदे के लिए मंदिरों में करते करोड़ों दान।
ज़िन्दों को मार के हमको प्रसन्न करोगे? पूछता मेरा भगवान ।

मन्त्री कहते आज देश मेरा कर रहा हैं विकास,
आज भी लाइम सिटी के किनारे झुग्गियों में बसी देश की 70% की आबादी ।
शारीरिक और मानसिक रुप से स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे आज भी।
कभी आ जाये बरसात या तूफ़ान।
इक क्षण में ढह जाये इनके कच्चे मकान।
रात में गाड़ी वाले जान बूझकर हार्न जोरों से बजाते हैं।
सारी रैना उन गरीब बेघरों को सताते हैं।
ख़्वाहिश काश मिल जाए इक छोटा-सा घर, ताजमहल से भी अजीज़ लगेगा अपना होगा अगर।

देश की चिंता किसको, बड़े पोस्ट पर बैठे साहब करप्शन, फ्राड करके चला रहे अपनी दुकान।
तड़प रहे, नहीं बेरोजगार के पास रोटी, कपड़ा और मकान।
पैसे वालों को चाहिए बस इक टाइम के लिए ही लाखो का खान-पान।
क्या ऐसे ही बनेगा मेरा भारत महान ???

कविता

आख़िर क्यों हम हरे गेरुए के बीच सफ़ेद को भूल जाते हैं

सुबर्णा बनर्जी
--- *राजनीतिक विज्ञान विशेष, तृतीय वर्ष*

सुबह चार बजे की अज़ान से मेरी नींद खुलती है,
अदरक वाली चाय के साथ जब अख़बार के पन्ने पलटती हूँ
तब सुर्खियाँ अक्सर दिल को दहला देती हैं।
नमाज़ की आवाज़ से परेशान लोगों ने मस्जिद पर किया हमला।
या मंदिर की घंटियों से तंग आकर लोगों ने मंदिर बंद करवाया।
क्रिसमस के दिन गिरजाघर जाने से मिली लोगों को धमकी।

कभी-कभी सोचती हूँ,
ऊपर बैठा वो शख़्स क्या सोचता होगा।
क्या हम पर हँसता होगा।
या खुद पर रोता होगा।
मेरा ईमान क्या इतना कमज़ोर है जो एक इंसान के बोलने से टूट जाए।
क्या तुम्हारा मज़हब भी इतना कमज़ोर है जो चंद लोगों से बँट जाए।

किस बात की ये जंग है?
कौन किस से महान है
या कौन सबसे ज्यादा बलवान है
दिवाली की फुलझड़ियों की किलकारियाँ कब गोलियों के शोर में खो गई?
मोहर्रम में हसन और हुसैन के नाम के बीच कब आग की लत सुलग गई?

एकता की बात करने वाले फ़कीरों ने क्यों सिर्फ एक अकेले की बात उठाई है।
हल चलाने वाले हाथों में किसने ज़ंजीर पहनायी है?
क़लम चलाने वाले हाथ भी अब रुक से गए हैं।
नीली सियाही से सफ़ेद काग़ज़ पर लिखने वाले लोग भी अब हरे-गेरुए की जंग में शामिल हो गए हैं।
अम्बेडकर के देश में धर्मनिरपेक्षता एक गाली है।
सावित्री बाई फुले के शहर में नारीवाद ने मुँह की खाई है।

तुम्हारे, मेरे, हम सब के तन में खून अभी भी लाल ही तो बहता है।
चोट भले एक हाथ पे लगे, दर्द हमारे जिस्म में ही तो रहता है।

Poem

The only man I trust

Areesha Aafreen
-- *BA Programme, 1st Year*

The day I was born,
You gently put me in your arms, kiss my forehead and said, "How beautiful you are."
I started crying, not know what's going.
As I grow old I came to know, that you are the reason behind my identity.
My guardian angel,
My protector,
My warrior,
My savior,
What I am now and I will be after.
You are the reason behind every shade of my character.
Everytime time that I woke and fake a smile.
You gently whisper in my ears, what happen? Is everything fine?

And I wonder how you understand me way more than anybody will ever do.
Sometimes I take you for granted, but deep down in my heart I know, that without you I can't take a single step or utter a line.
I am like the tortoise and you are my shell, my safe place.
I ran towards you when it's thunder, dark or even the ran.
You dreamed the dreams that I had dreamt.
And worked for it more than me.
You taught me, if you want something go get it.
Be brave, beautiful, confident and strong enough to achieve it.
You suffered for my things beyond my imagination.
And I know if I thank you for things you have done, it doesn't make and sense.
But, thank you father for believing me, inspiring me, not clipping my wings and letting me fly.
I love you!!
My guardian angel, you are the only man I trust.

कहानी

चुनौतियों का सामना

अमित कुमार

--- *बी ए प्रोग्राम, तृतीय वर्ष*

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर स्कूल में स्वतंत्र भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गई जिसमें कोई भी छात्रा भाग ले सकती है। लगभग 12-13 छात्राओं ने अपना पंजीकरण कराया। इसी में एक राधिका भी थी। प्रतियोगिता शुरू होती है। एक के बाद एक प्रतिभागी अपना वक्तव्य पेश करते हैं। कोई अपना अनुभव, कोई स्त्री की समाज में भूमिका को बताता है। सभी श्रोता और निर्णायक मंडल गौर से सुनते है।

अब स्टेज पर राधिका को बुलाया जाता है। राधिका हाथ में माइक लेकर बोलती है- "हेलो मेरा नाम राधिका है और मैं यहाँ पर एक कहानी या कहे अपना अनुभव को साझा करूँगी।" इतना बोल के राधिका मौन हो जाती है। "घबराओं नहीं।"- एक निर्णायक अध्यक्ष बोलते है। राधिका पुनः प्रयास करती है और बोलती है- "यह बात कुछ साल पहले की है जब मैं क्लास 4 में थी। एक दिन मैं स्कूल से घर आई। मैंने देखा कि मम्मी के मुँह से खून निकल रहा था, उनका चेहरा लहूलुहान था और पापा उन्हें बेल्ट से मार रहे थे। मैं बहुत डर गयी मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। मैं जल्दी से दौड़कर पड़ोस वाली बिमला आंटी के पास चली गयी। आंटी, अंकल और भईया जल्दी से दौड़कर आए और पापा को पकड़ लिया और घर से बाहर निकाल दिया और मम्मी को डॉक्टर के पास ले गए। पापा का वह रूप मैंने आज से पहले कभी नहीं देखा मैं बहुत डर गई थी। उसके बाद पापा 4-5 दिनों तक घर नहीं आये।

मम्मी की देखभाल बिमला आंटी कर रही थी। मम्मी बिमला आंटी को सारी बातें बता रही थी। मैं भी गेट के पीछे छुपकर सारी बातें सुन रही थी। मम्मी कह रही थी- "मुझसे कहते है कि अपने बाप से पैसे लेकर आ ये सब लगभग शादी के 2 साल बाद से ही शुरू हो गया। इनका बाहर किसी दूसरी औरत के साथ चक्कर भी चल रहा है। महीने की सारी सैलरी उसी पे उड़ा रहे है।" इन सब बातों को अर्थ मुझे उस समय नहीं आया शायद नादान थी मैं उस वक़्त।

इस घटना के 1 सप्ताह के बाद पापा फिर मम्मी को मारने लगे और कह रहे थे-"अपने बाप से 10 लाख रुपये लेकर आ।" मुझसे देखा नहीं गया और मैं मम्मी को बचाने चली गयी। पापा मुझे भी मारने लगे और मम्मी ने ये सब देखा उन्होंने मुझे बचाने के लिए पापा को तपाक से ज़मीन पर गिरा दिया। न जाने उनमें ये ताक़त कहाँ से आ गयी शायद उनसे देखा नहीं गया जब पापा ने मुझे मारा। मम्मी तपाक से मुझे उठाकर घर से बाहर निकली और पापा उठकर हमारे पीछे भागे। बाद में बिमला आंटी और अंकल ने पापा को पकड़ लिया और भईया ने पुलिस को कॉल किया। पुलिस ने पापा को पकड़ लिया मम्मी ने उनके खिलाफ़ एफ.आई.आर दर्ज की। शायद जब तक उन पर बीती वह सहन करती रही, लेकिन जब बात उनकी बेटी पर आ गयी.... वो दिन याद करके मैं सहम जाती हूँ। इसी के साथ मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करती हूँ। निर्णायक मंडल और श्रोताओ ने तालियों की बारिश-सी कर दी। हालांकि राधिका को कोई पुरस्कार नहीं मिला परंतु वह बहुत खुश थी और वो तालियाँ ही उसका असली पुरस्कार।

कविता

सूर्य की अंश

श्रद्धा सैनी

---*बी ए प्रोग्राम, प्रथम वर्ष*

माहौल की पाबंदियाँ ना अब मैं सहूँगी,
मेरा दिल जो कहता है वो अब मैं कहूँगी।

धिक्कार है उन पर जो कहते मुझे अबला नारी,
मैं तो सूर्य की अंश हूँ, मेरी किरण तक है भारी।

जिस डर ने मेरी नज़रों को सिखाया था झुकना,
उसी डर ने मेरी तन को सिखाया था ढकना।

क्यों नजरे झुकाऊ मैं, क्यों न झुकते वही,
तन तो मैं ढकना चाहूँ, पर उनके डर से नही।

कदम-कदम पर संभालना मुझे सिखाया जाता,

उनकी अंगारों से नज़रों से मुझे बचाया जाता।

मुझको ना बचाओ, मिटाओ उनकी आँखों की अंगारी,
मैं तो सूर्य की अंश हूँ मेरी किरण तक है भारी।

क्यों करते ये मेरे पल-पल की ख़बरों की तलाश,
ये जो हथकड़ियाँ हैं, ये करती मुझे बेबस और हताश।

चार मीनार के अंदर सीमित हूँ मैं, आख़िर क्यों ?
जब की ज्ञान के आकाश की मैं भी मुसाफ़िर हूँ।

ज़िंदगी में कुछ आगे, मुझको भी बढ़ने दो,
शांति और समृद्धि से, मुझको भी पढ़ने दो।

एक दिन शादी कर लूँगी, पर बचपन से न करो उसकी तैयारी,
मैं तो सूर्य की अंश हूँ, मेरी किरण तक है भारी।

कमज़ोर न मुझको कह देना, कमज़ोरी न मुझ में होती है,
जो कोख से बच्चा जन्म दे, मजबूती की शिखर वो होती है।

आँसू आना जाहिर है, जो दुनिया में छोड़ जाऊँ,
पर जन्म लेते ही, क्यों अपने परिवार को मैं रुलाऊँ।

मेरा होना बद क़िस्मत नही, ये तुम्हारे दिमाग़ की कमी है,
मैं तो पृथ्वी की माँ हूँ, ये सृष्टि ही मुझसे बनी है।

जो हम सब दुनिया छोड़ जाएँ, रहेगी न धरती प्यारी,
मैं तो सूर्य की अंश हूँ, मेरी किरण तक है भारी।

बड़े-बड़े काम दुनिया में, कर तो मैं भी सकती हूँ,
पर आख़िर कैसे जब दुनिया मे रसोई से देखती हूँ।

ना बनना मुझे किसी की ज़िम्मेदारी, ना ही किसी की मजबूरी
मैं खुद के हित पर जी लूँगी, अगर मिले मुझे पढ़ने को मंजूरी।

मेरी भी ज़िंदगी है, मैं भी हूँ एक इंसान
फिर क्यों नही मेरे पात्र में लिखा मान सम्मान।

जो मैं सबसे अड़ गई, देखेगी दुनिया सारी,
मैं तो सूर्य की अंश हूँ, मेरी किरण तक है भारी।

Poem

PERFECTION

Krati Sharma
--- *BA Programme, 1st Year*

Ups and downs, lows and highs
People say that it is the part of life,

But then i wonder!
Why should we bother?

Suffering through all the pain,
Without upheavals, couldn't it be possible that life's plateau become plain

I think and think and overthink sometimes,
How can I make everything 'PERFECT' all the time?

Can't we live without wondering so much,
Just existing with neutrality as such.

Can't we just live, learn and go with the flow,
Leaving the annoying and 'Thoughtful' row.

❖ *जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।*
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।। - तुलसीदास ❖

Poem

DREAMS

Shivani Singh

--*B.Sc Hons Chemistry, 1st Year*

The day I saw you
For you I wake up
For you I walk
For you I even run
Cause life run by dreams
And dreams run by life

For you I am making my self perfect
For you I'm making good efforts
Foryou I'm making my self sincere
Cause dreams belongs to life
And life belongs to dreams

You are like shinny ray in my life
You are scented wind in my life
You are happyspring in my life
Cause happiness belongs to dream
And dream belongs to happiness

You are the brightest star in my sky
You are the flying bird in my Sky
You are the happy rain in my sky
Cause sky belongs to dream
And dream belongs to sky

So my little poet friends

Fly for you dreams
Live for you dreams
And become the master of the ocean
for your dreams

Dreams is in me
Dreams is in you

Fulfill your Dreams
Saw your dreams in a day
Fulfill your dreams in a night

Cause night belongs to darkness
Darkness belongs to shinny day
A shinny day dedicates to Hope

And hope dedicates to your wholeness
of your True Dreams

❖ *प्रेम-प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।*
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय।। - *रसखान* ❖

लेख

अंबेडकर और बुद्ध

शिवम राय

-- *हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष*

आज के लगभग 25-26 वर्ष पूर्व के भारतीय समाज में; जो अंधविश्वास, गैर-बराबरी तथा अनेक प्रकार के पेड़ों से संलग्न था; गौतम बुद्ध ने जो समता तथा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया वह अभूतपूर्व था। सदियों से वर्णव्यवस्था के ब्राह्मण तथा शुद्र संबंधित समाज गठित कुरीति के कारण प्रकृत निर्मित दो समान नर के बीच देव तथा दैत्य जैसा व्यवहार अप्राकृतिक, अमानवीय था। इसीलिए ज्ञान प्राप्ति के पश्चात बुद्ध ने प्रत्येक उपेक्षित पीड़ित जन की मुक्ति तथा निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने बताया की अपेक्षाएँ तृष्णा और वासना ही सर्व दुख का कारक है और अष्टांगिक मार्ग—सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक्, सम्यक कर्मात, सम्यक आजीवन, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि, से इनकी समाप्ति होने पर व्यक्ति दुख-मुक्त होगा। वर्षों से उपेक्षा के शिकार शुद्र की मुक्ति भी इन्हीं अष्टांगिक मार्ग से प्राप्त हो सकता है। गौरतलब है कि बुद्ध की मुक्ति व्यक्ति-मुक्ति को केंद्र में रखता है अतः एक पीड़ित वर्ग की मुक्ति भी वयक्तिक मुक्ति से प्राप्य बतलाता है। उनके इस दृष्टिकोण को बुद्धिज्म की अनेक संप्रदाय (हीनयान, महायान, वज्रयान) में मूल रूप से अनुसरण किया जाता है।

बीसवीं शताब्दी में दलित-मुक्ति के प्रश्न को ध्येय बनाने वाले डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने विचार-विमर्श प्रारंभ किया तो समतावादी बुद्ध उनके प्रेरक बने। किंतु बुद्ध की व्यक्ति से समाज की पथ प्रक्रिया उचित नहीं लगी अतः उन्होंने बुद्ध के आदर्शों को स्वीकारते हुए भी एक नवीन पथ नवयान की संकल्पना तैयार की। नवयान व्यक्ति मुक्ति केंद्रित होने के बजाय सामूहिक मुक्ति की बात करता है, आत्मानुभूति के ऊपर सामान समाज स्थापित करने को वरीयता देता है। अंबेडकर मानते थे कि दलित एक उपेक्षित, कमज़ोर वर्ग है तथा दलितों का शोषण उनकी सामूहिक सामाजिक पहचान के आधार पर होता है। इसलिए एक व्यक्ति यदि एकल सामर्थ्य से स्वयं की मुक्ति करता भी है तो वर्तमान समाज में उसे असल मुक्ति प्राप्त नहीं होगी और अकेले करना भी असंभव है। इसलिए सर्वप्रथम सामूहिक चेतना कि उनका शोषण हुआ फिर सामूहिक प्रयास फिर समतावादी समाज की बुनियाद तत्पश्चात ही दलित मुक्ति संभव है। वे स्पष्टतया मानते थे कि समूह ही इस सामाजिक विकृति को समाप्त कर सकता है और इसलिए स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान दलितों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली का समर्थन तथा संविधान में इनके लिए आरक्षण का प्रावधान किया। यह सही है कि पिछले 75 वर्षों में आरक्षण से अपेक्षित लाभ नहीं हुआ किंतु इस स्थिति में सुधार हुई इसमें कोई संशय नहीं।

यदि हम बुद्ध के दृष्टिकोण किस सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना करें तो मालूम पड़ता है कि दलित या अन्य उपेक्षित वर्ग की मुक्ति है क्या अधिक कारगर विधि है। क्योंकि जिस प्रकार दुबले पतले नए उगे दस-बीस पौधे मिलकर भी एक पूर्ण वृक्ष को तनिक भी टक्कर नहीं दे सकते उसी प्रकार बीस सदियों से सताए कमजोर दलित मिलकर भी रूढ़ मजबूत जातिवाद की दीवार को गिरा देंगे यह सोचना उतना व्यवहारिक नहीं मालूम पड़ता। इसलिए बुद्ध ने पहला चरण आत्मा मुक्ति का ही रखा क्योंकि यदि उपेक्षित समाज का एक एक व्यक्ति व्यक्तिक स्तर पर स्वयं को शिक्षित,

सामर्थ्यवान और सचेत बनाएगा तो एक समय बाद उस समाज का औसत स्तर ऊपर उठेगा। जब औसत स्तर इस हद तक मजबूत होगा कि वह उस विकृति से लोहा ले सके उस समय हथौड़े की मार अपेक्षित समता रूपी फल की प्राप्ति अवश्य कराएगा। उदाहरण स्वरूप जैन समाज को देख सकते हैं जो आत्मानुशासन, आत्मध्यान और आत्म कर्म के मूल सिद्धांतों का अनुसरण कर भारत के सबसे समृद्ध समूह के रूप में हम सबके बीच हैं।

ऐसा नहीं है कि समाज मुक्ति के बजाय व्यक्ति मुक्ति के मंत्र को मूल जीवन मंत्र बनाकर चलने मात्र से ही जैन समाज इस उच्च स्तर को प्राप्त किया है। कई अन्य कारक भी है किंतु इस विचार का उनके कार्य व्यापार में अधिक प्रधानता से है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। नवयान स्वयं में आधुनिक भाव बोध की उपज है किंतु बुद्ध का आत्म मुक्ति की प्राथमिकी दृष्टिकोण भी अधिक प्रसांगिक है। अतः समकालीन परिस्थिति में दलित विमुक्ति करण हेतु बुद्ध के सर्वप्रथम आत्म मुक्ति की व्यापक स्तर पर अलख जगाना आज समय की मांग है। हमारा जीवन हमारे दर्शन का ही प्रतिबिंब होता है अतः हमारा दर्शन आत्मा उन्नति के भाव से भरा हो तो जीवन भी उन्नति से भरेगा इसमें कोई दो राय नहीं है। इसलिए निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि नवयान के सामाजिक दृष्टिकोण को भी ना छोड़े बुद्ध के आत्म मुक्ति के मार्ग को प्राथमिकता के साथ स्वीकार ना ही उपेक्षित वर्ग की उपेक्षा मुक्ति का मार्ग है।

कविता

मैं कौन हूँ

अंकित सिंह

बी ए प्रोग्राम, प्रथम वर्ष

मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ,
मैं ढूँढूँ हर जगह, मैं कहाँ हूँ ।।
किसने कहा पागल हूँ मैं, मैं जानता हूँ,
उसने कहा डरता हूँ मैं, मैं मानता हूँ,
मैं अपने अंदर के इंसान को जानता हूँ,
रोज़ आईने में दिखता है वो मुझे।।
सब कहते हैं सवाल में हूँ,
पर मैं तो जवाब में हूँ,
रोज़ सुबह निकलता हूँ खुद को ढूँढने,
पर मैं तो महताब में हूँ।।
क्या मैं वो पुराना दौर जो गुज़र गया हूँ,
या आने वाले कल का सवेरा नया हूँ,
मैं कौन हूँ मैं क्या हूँ।।
मै कोई शराब नही जो खराब हूँ,
मैं तो बस एक खुली किताब हूँ,
मैं खुमार हूँ, इज़हार हूँ,
यार किसी का तो इंतज़ार हूँ।।
मै खुला हूँ बन्द हूँ, अनेक हूँ चंद हूँ,
इस अच्छी दुनिया का बस एक छंद हूँ।।
दिल खोलकर सुनो कभी,
मैं अपने ही ख्यालों में बन्द हूँ,
कभी बहुत बोलता हूँ तो कभी मौन हूँ
मैं क्या हूँ मैं कौन हूँ ।।
हो सकता है मैं वो ख्वाब हूँ जो किसी तक न पहुँचे,
या वो ख्याल हूँ जो कोई दिन भर न सोचे।।
मैं कौन हूँ मै क्या हूँ ।।
अपने ही ख्यालों पे पहरा हूँ मैं,
राज़ थोड़ा गहरा हूँ मैं,
तुम जहाँ देखो वहाँ हूँ मैं,
मुझे खुद नही पता कहाँ हूँ मैं,
मैं कौन हूँ क्या हूँ मैं ।।

<u>कविता</u>

मोमबत्तियाँ

शिवम राय

-- *हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष*

यूँ बार-बार बाज़ार जाने से परेशान हो गया,
खुदरे दामों में किनना महंगा पड़ गया।
तो सोचा कि एक ही बार में दुकान ख़रीद लूँ,
सोचिए मत! मैंने सोचा मोमबत्तियाँ खरीद लूँ।
आख़िर ज़रूरत हर रोज़ पड़नी ही है,
जलाकर जुटाकर ज़मीं मानवता पिघलाना ही है।
तो खरीद लेता हूँ मोमबत्तियाँ बलात्कार की दर से,
ताकि उबले खून तो जलाकर शांत रह सकूँ मन से।
पर अफसोस की मोमबत्तियाँ कम पड़ गईं,
मैंने जोड़ा था दिन का पर घटना हर क्षण हो गई।
तो क्या इतनी मोमबत्तियाँ काफी होगा?
पर सब बलात्कार बराबर हैं क्या?
सब में हिंसा इतना है क्या?
क्या सब ने उतना ही चींखा होगा?
क्या सब ने देह को उतना ही कोसा होगा?
जो हाँ तो हाय!
मोमबत्तियाँ कम पड़ गईं ,
जलाऊँ मैं कैसे यह घटना हर क्षण हो रही।
पर मोमबत्ती का यह जलना ठीक है क्या?
जलाकर जुटाकर जगाना ठीक है क्या?
क्या जल जाते हैं इससे गिद्धों के पर,
कि न उड़कर उघारे किसी अबला का तन?
ग़र नहीं,
तो मत जलाओ यह मोमबत्तियाँ,
मत भरो चौराहों को,
मत कोसो सत्ता के हुक्मरानों को,
मत जलाओ मोमबत्तियाँ तस्वीरों पर।

याद करो हमने मोमबत्तियाँ नहीं जलाई।
जो किया हरण तो लंका जलाई।
जो लूटने को आई थी आबरु,
तो वंश कौरव हस्तिनापुर मिटाई।
तो फेंक दो ये मोमबत्तियाँ
और जलाओ मन मे ज्योतियाँ।
स्वयं को स्वयं से संयमित बनाओ,
न ढ़ेर तो अपनों से पल की पीड़ा बताओ,
बताओ कि नौ मास पाला है कैसे,
बताओ कि प्रसव को सहा है कैसे,
बताओ कि स्तन पिलाया है कैसे,
बताओ कि रातों को जागा है कैसे।
बताओ कि बहना जो जाती है पार ,
धड़कता है सीना डराती है शाम।
कि बिटिया यह मेरी खुशी घर पर आए,
या नंगे बदन को ज़िंदा जलाए।
बताओ दरिंदा है भाई या बेटा,
बताओ कि तुम ना तो घटना न होता,
बताओ जो खुद को बचाना है तुमको,
बताओ जो निर्भया न बनना है तुमको,
और अब भी ना समझे तो दे दो मोमबत्तियाँ,
और हँसते से चेहरे की खींची तस्वीर,
कि जलाएँ मोमबत्तियाँ निकालें भड़ास,
मांगे सजा मृत्युदंड और दिखाए पुरुषार्थ।
पर दिलाना कि याद न लौटूँगी द्वार,
न माँगूँगी भैया मैं राखी सौगात,
तुम जलाना मोमबत्तियाँ और करना सवाल,
क्या जीते जी मेरे तुम सोचे यह बात?

दो कविताएँ

विकास

--बी.ए. प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष

बदलाव

मनुष्य बदल गया है आज
प्रगति की माया जारी है
आज तुम वही नहीं हो
आज मैं भी वही नहीं हूँ।
कह दूँ संसार बदल गया है,
मैं भी, तुम भी।
एक महज़ वहम का
धुंधला-सा घृणा-सा
आभास जारी है।
पर फिर भी
तुम्हारा और मेरा
मतलब का साथ जारी है।
एक महज सन्नाटा आस-पास है
जीवन का यही आचरण साथ है।
सुख-दुख जैसे अकेले-अकेले
जीया जा रहा है
जैसे भीतर दुखी हृदय
रोकर एहसास दिला रहा है।
जैसे कोई तुम्हारे कंधे से
हाथ छुड़ा रहा है।
फिर भी खामोश हूँ
क्योंकि बचपन का साथ है
एक तू ही तो मेरी आस है।
यही तो साथ का बहाना है
एक दिन मनुष्य को तो
चलन के साथ बहते जाना है
हमें तो बदलते जाना है।
प्रगति की इस माया में
मनुष्य को समय-समय पर
बदलते जाना है।

साथी हाथ बढ़ाना है

साथी हाथ बढ़ाना है
सबको आगे जाना है
भीड़ नहीं लगाना है
डट कर लड़ते जाना है
विश्व के कल्याण में
भागीदार बनते जाना है।
इस कोविड महामारी में
जीवन जीते जाना है
आगे बढ़ते जाना है।
झूठे वादे के झांसे में
नहीं कभी भी आना है।
अपने मन मंदिर में
छोटी-सी कविता से
सुंदर घर बनाना है।
साथी साथ देना है
भारी बोझ ढोना है
जीवन के उतार-चढ़ाव में
आगे चलते जाना है
साथी हाथ बढ़ाना है।

MOTILAL NEHRU COLLEGE

(University of Delhi)

Benito Juarez Marg, New Delhi - 110021